[2017] 1 एस.सी.आर. 945

आशा रंजन

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

(2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132)

15 फरवरी, 2017

[दीपक मिश्रा और अमिताभ रॉय, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधानः

अनुच्छेद 32, 142 और 144 - शक्ति के अन्तर्गत- आरोपियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित करने के निर्देश जारी करने के तहत शक्ति, प्रतिवादी क्रमांक 3 और 4 और अन्य आरोपी व्यक्तियों के समूह द्वारा याचिकाकर्ता के पति (वरिष्ठ पत्रकार) की क्रूर हत्या, तीसरा प्रतिवादी, एक खूंखार अपराधी-सह-राजनेता, घोषित हिस्ट्री शीटर टाइप 'ए' (जो सुधार से परे है), आज तक 75 मामलों में मामला दर्ज, जिसमें से 10 मामलों में दोषी ठहराया गया और 45 मामलों में मुकदमे का सामना कर रहा है, ऐसा ही एक मामला याचिकाकर्ता के तीसरे बेटे की हत्या से संबंधित है और अन्य दो हत्या के प्रयास के हैं, याचिकाकर्ता द्वारा तीसरे प्रतिवादी को सीवान जेल से तीहाड़ जेल स्थानांतरित करने की रिट याचिका-निर्णय: धारा 3 न्यायालय के लिए एक राज्य से दूसरे राज्य में अभियुक्त या दोषी को स्थानांतरित करने का आदेश पारित करने में बाधा उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि यह धारा 142 संविधान के तहत नागरिकों को दिए गए मौलिक अधिकारों को कम नहीं कर सकती है, मूल प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए आदेश पारित नहीं कर सकती है, फिर भी

जब तत्काल प्रकृति का मामला उठता है तो यह उचित निर्देश जारी कर सकती हे ताकि आपराधिक मुकदमा कानून के अनुसार चलाया जा सके - स्वतंत्र और निष्पेक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना इस न्यायालय का दायित्व और कर्तव्य है, इस प्रकार, बिहार राज्य ने तीसरे प्रतिवादी को दिल्ली में उसके स्थानांतरित के लिए पूर्व सूचना देने के बाद सीवान जेल, जिला सिवान से तिहाड़ जेल, दिल्ली स्थानांतरित करने का निर्देश दिया। लंबित मुकदमे वीडियो कॉन्फ्रेसिंग के जरिए चलाए जाएंगें। कैदी के स्थानांतरण अधिनियम 1950 की धारा 3 के तहत

अनुच्छेद 21 - निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणाः अनुच्छेद 21 का पहलू है। 21- निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार जैसा कि अभियुक्त के दृष्टिकोण से माना जाता है, विलक्षण रूप से निरपेक्ष नहीं है- यह अपने दायरे में आता है और पीड़ित(ओं) और समाज के व्यापक अधिकार ये कारक सामूहिक रूप से कानून के शासन का संकेत देते हैं और उसका गठन करते हैं- स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई - जब पीड़ित के हित या उसी के संबंध में समाज के सामूहिक हित के साथ अंतर संघर्ष हो। मौलिक अधिकार, संवैधानिक न्यायलयों का यह दायित्व है कि वे कुछ परिस्थितियों में, समग्र रूप से समाज के हित में कानून के शासन को बढ़ावा देने और स्थापित करने के लिए संतुलन तौलें - निष्पक्ष सुनवाई वह नहीं है जो अभियुक्त निष्पक्षता के नाम पर चाहता है परीक्षण - निष्पक्ष परीक्षण से व्यक्तिगत रूप से मांगे जाने वाले अंतिम न्याय को शांत किया जाना चाहिए, लेकिन यह अधीनस्थ है और तब प्रभावी नहीं होगा जब निष्पक्ष परीक्षण के लिए आपराधिक कार्यवाही को स्थानांतरित करना आवश्यक है।

2016 की रिट याचिका (आपराधिक) सं॰ 147 का निपटान और 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 का आंशिक रूप से निपटान करते हुए, न्यायालय ने

अवधारित किया: 1.1 संविधान के अनुच्छेद 21 के एक पहलू के रूप में निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा के अध्ययन विश्लेषण पर, यह ध्यान देने योग्य है कि इसके दायरे और व्यापक रूप में यह अभियुक्त अभियोजन पक्ष और पीड़ितके हित को शामिल करता है। पीड़ित, एक अकेला व्यक्ति हो सकता है, जिसे नुकसान हुआ हो, लेकिन एकवचन से हुई चोट से समुदाय के हित प्रभावित होने की संभावना है। इसलिए, कुछ परिस्थितियों में और कुछ मामलों में सामूहिक, पीड़ित का पद ग्रहण करता है। वे मुआवजे के हकदार नहीं हो सकते हैं क्योंकि दं०प्र०सं० की धारा 357 ए के तहत कल्पना की गई है, लेकिन अपराध की उनकी व्यग्रता और चिंता और ऐसी घटनाओं को रोकने की इच्छा और अपराधी, यदि दोषी है, तो उसे दंडित किया जाना चाहिए, कानून के शासन का एक पहलू है। और इसे स्वीकार करना होगा और अंततः इसकी रक्षा करनी होगी। [पैरा 44] [982-सी-ई]

1.2 अनुच्छेद 21 के तहत अधिकार निरपेक्ष नहीं है। इसे कानून के अनुसार कम किया जा सकता है। उचित प्रक्रिया का पालन करके अधिकार में कटौती की अनुमति है जो तर्कसंगतता की कसौटी का सामना कर सकती है। यह तर्क कि यदि अभियुक्त को सिवान की जेल से बिहार राज्य के बाहर किसी अन्य जेल में स्थानांतरित किए जाने पर, उसके निष्पक्ष सुनवाई का उसका अधिकार और उक्त प्रस्तावक का खंडन, कि अभियुक्त का न तो प्रक्रिया पर एकाधिकार है और न ही उसके पास कोई विशेष रूप से पूर्ण अधिकार है और न ही उसका कोई विशेष रूप से पूर्ण अधिकार है, एक संतुलित समाधान है, दोनों विपरीत तर्क हैं इस विवाद का निर्णय करें। पीड़ित का हित प्रासंगिक है और उसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह तर्क कि यदि अभियुक्त को सीवान जेल से बाहर नहीं भेजा जाता है, तो लंबित मुकदमें पूरी तरह से हास्यास्पद हो जाएंगे, क्योंकि कोई भी गवाह उसके खिलाफ गवाही देने की स्थिति में नहीं होगा और वे पूरी तरह से असहाय होकर उसके अदृश्य जाल से उत्पन्न भय की भावना के आगे झुकने को बाध्य होंगे, कोई बनावटीपन नहीं है। और इसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय को अभियुक्त और पीड़ितों

के बीच अधिकारों को संतुलित करना चाहिए और उसके निष्पक्ष सुनवाई के पैमाने पर बोलना चाहिए कि स्थानांतरण आवश्यक है या नहीं। यह हास्यास्पद होगा यदि इस कथन को नजरअंदाज कर दिया जाए कि यदि प्रतिवादी संख्या-3 को सीवान जेल से स्थानांतरित नहीं किया जाता है और मुकदमा सीवान में चलाया जाता हे, तो न्याय जो कानून के आनुसार किया जाना आवश्यक है, अभूतपूर्व रूप से पिछड़ जाएगा और याचिकाकर्ता लगातार भय की स्थिति में रहेंगे जो उनकी हड्डियों को गला देंगे। इसका अर्थ अधिकारों का संतुलन होगा। [पैरा-45] [982-ई-एच; 983-ए-बी]

1.3 ऐसी परिस्थितियाँ उभर सकती हैं जो अंतर-मौलिक अधिकारों के बीच संतुलन के लिए आवश्यक हो सकती हैं। यह स्पष्ट रूप से समझा गया है कि दो मौलिक अधिकारों या अंतर मौलिक अधिकारों को संतुलित करते हुए जिस परीक्षण को लागू किया जाना है, लागू किए गए सिद्धांत एक ही मौलिक अधिकार के बीच अंतर-संघर्ष में लागू किए जाने वाले सिद्धांत से अलग हो सकते हैं। वर्तमान मामले में, अभियुक्त को अनुच्छेद 21 के तहत निष्पक्ष सुनवाई का मौलिक अधिकार है। इसी तरह, पीड़ित जो सीधे प्रभावित होते हैं और सामूहिक के घटक का एक हिस्सा भी होते हैं, उनके पास है निष्पक्ष सुनवाई का मौलिक अधिकार। इस प्रकार, अधिकार का दावा करने या दावा करने के लिए वैधता रखने वाले दो व्यक्ति हो सकते हैं। वैधता का तथ्य एक प्राथमिक विचार है। कोई भी मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं है और कुछ परिस्थितियों में इसकी सीमाएँ हो सकती हैं। इस प्रकार, अनुमेय सीमाएँ राज्य द्वारा लगाई जाती हैं। उक्त सीमाएँ कानून की सीमा के भीतर होनी चाहिए। हालांकि, जब एक ही अनुच्छेद के तहत प्रदत्त अधिकार का अंतर-टकराव होता है, जैसे कि निष्पक्ष सुनवाई, तो जिस परीक्षण को लागू करने की आवश्यकता होती है, वह "सर्वोपरि सामूहिक हित" या "न्याय वितरण प्रणाली में जनता के विश्वास को बनाए रखना" होगा। इस प्रकार, यदि सामूहिक हित या सार्वजनिक हित की पूर्ति करता है तथा उनके पास मौलिक अधिकार का दावा करने या उसे लागू करने की वैधता है, तभी वह यह कह सकता है कि

उसके अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए पीड़ितों के अधिकार अनुच्छेद 21 का एक अविभाज्य पहलू है और जब वे खुद के साथ-साथ सामूहिक रूप से इस अधिकार का दावा करते हैं, तो सार्वजनिक हित की अवधारणा को बढ़ावा मिलता है। ऐसी परिस्थितियों में सार्वजनिक हित को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि यह कानून के शासन को आगे बढ़ाता है और बढ़ावा देता है। इसे तुरंत वर्गीकृत किया जा सकता है कि प्राथमिकता का परीक्षण जो वैधता और सार्वजनिक हित पर आधारित है प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्णय लिया जाना चाहिए और इसे अमूर्त शब्दों में नहीं कहा जा सकता है। इसके लिए तथ्यों, प्रतिस्पर्धी हितों और अंतिम धारणा के अध्ययन की आवश्यकता होगी। जो व्यापक सार्वजनिक हित को पूरा करेगी और कानून के शासन की महिमा की सेवा करेगी। [पैरा 53] (986-एफ-एच; 987-ए-बी, सी-एफ]

1.4 एक धारणा हो सकती है कि यदि प्रधानता के सिद्धांत का पालन करना है, तो व्यक्ति का अधिकार पूरी तरह से समाप्त हो जाता है। यह ध्यान में रखना होगा कि पूर्ण विलुप्त होना संतुलन नहीं है। जब संतुलनकारी कार्य किया जाता है, तो निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार पूरी तरह से अक्षम नहीं होता है, लेकिन इसमें कुछ हद तक कटौती की जाती है जिसके द्वारा अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार मिलता है और साथ ही, पीड़ितों को लगता है कि निष्पक्ष सुनवाई की जाती है और न्यायालय आश्वस्त महसूस करती है कि ऐसे मामलों के संबंध में एक निष्पक्ष सुनवाई होती है। इसके अलावा, सामूहिक विश्वास को आपराधिक न्याय वितरण प्रणाली में रखा जाता है और यह स्थिर बना रहता है। [पैरा 54] [987-एच; 988-ए-बी]

1.5 ऐसी स्थिति में लोक हित की अवधारणा की सराहना करते हुए, न्यायालय को इसमें खुद को संलग्न करने की आवश्यकता है। निष्पक्ष सुनवाई की प्रक्रिया का अर्थ निकालना जो अंततः न्याय के उद्देश्य को कम करता है और संवैधानिक संवेदनशीलता के

करीब रहता है एक अभियुक्त, निष्पक्ष सुनवाई के नाम पर, धारा 309 दं०प्र०सं० के तहत निहित मुकदमे के संचालन के पीछे के मूल उद्देश्य को विफल करते हुए स्थगन की मांग नहीं कर सकता है। वह दं०प्र०सं० के विभिन्न प्रावधानों के तहत आवेदन दायर नहीं कर सकता है, चाहे वह मान्य हो या नहीं, और प्रत्येक अवसर पर एक याचिका दायर कर सकता है जो निष्पक्ष सुनवाई का सिद्धांत उसे मंजूरी देता है। ऐसी स्थिति में, अभियोजन पक्ष जो सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करता है और पीड़ित, जो अपनी व्यक्तिगत शिकायत के उपचार के लिए लड़ता है, को अपनी बात रखने की अनुमति है और अदालत से मूक दर्शक होने की उम्मीद नहीं की जाती है। इस प्रकार, जब एक ही मौलिक अधिकार में अंतर-संघर्ष होता है, विशेष रूप से निष्पक्ष सुनवाई के संदर्भ में, जो विवाद उत्पन्न होता है, उसे प्राप्त करने वाली तथ्य स्थिति के संबंध में हल किया जाना चाहिए। एक अभियुक्त जो अपनी उपस्थिति से अदालत में एक गवाह की सुरक्षा के विचार को नष्ट करने में सक्षम रहा है या उस मामले के लिए अंतिम न्याय में पीड़ित के विश्वास को बाधित और नष्ट कर देता है और इस तरह का क्षरण मुकदमे के माहौल में प्रचलित भय मनोविकृति के कारण होता है, उसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक अविवेकपूर्ण स्थिति है। असहनीय स्थिति। इस तरह के खतरे को चुपचाप सहन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि "न्याय की महिमा" इस तरह की शिकायतों को जीवित नहीं रहने देती है। [पैरा 55] [988-सी-एफ]

1.6 इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि समानता कानून पर हावी नहीं हो सकती है। कैदी स्थानांतरण अधिनियम, 1950 की धारा 3 राज्य सरकार को दूसरे राज्य से परामर्श करने के बाद किसी आरोपी को दूसरे राज्य में स्थानांतरित करने की शक्ति प्रदान करती है। राज्य द्वारा इस तरह की कार्रवाई को धारा 3 के तहत उल्लिखित परिस्थितियों द्वारा पूरी तरह से नियंत्रित किया जाना चाहिए। जब राज्य किसी अन्य राज्य की सहमति से कोई आदेश पारित करता है, तो वह उन परिस्थितियों से बंधे रहने के लिए बाध्य होता है जो धारा 3 (1) के तहत अभिनिर्धारित हैं, लेकिन जब संवैधानिक न्यायालय के समक्ष निष्पक्ष

सुनवाई का मुद्दा उभरता है, तो धारा 3 को इस तरह से नहीं माना जा सकता है कि वह अदालत को स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई के लिए जो अनिवार्य और आवश्यक है उससे रोका जा सके। वैधानिक शक्ति ऐसी नहीं है जो नकारात्मक हो और न्याय के हित में कार्य करने और स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने की अदालत की शक्ति को कम करती हो, जो कानून के शासन के लिए सर्वोपरि है। यह केवल कार्यपालिका की शक्ति को नियंत्रित करता है। [पैरा 68] [998-जी-एच; 999-ए-सी]

1.7 तीसरे प्रतिवादी को पहले ही हिस्ट्रीशीटर/अपराधवृत्त/लिप्यंतरित प्रकार 'ए' (जो सुधार से परे है) घोषित किया जा चुका है। आज तक, उन पर 75 मामले दर्ज किए गए है, जिनमें से उन्हें 10 मामलों में दोषी ठहराया गया था और वर्तमान में वे 45 मामलों में विचारण का सामना कर रहे हैं। उन्हें 20 मामलों में बरी कर दिया गया है। 45 मामलों में से 21 मामले ऐसे हैं जिनमें अधिकतम सजा 7 साल या उससे अधिक है। उन पर 15 मामलों में मामला दर्ज किया गया है जहां वह हिरासत में रहे हैं और ऐसा ही एक मामला याचिकाकर्ता के तीसरे पुत्र की हत्या से संबंधित है और अन्य दो मामले हत्या के प्रयास के हैं। वह इलाके के एक प्रभावशाली व्यक्ति हैं, दो मौकों पर विधान सभा का प्रतिनिधि रहे हैं और चार बार संसद सदस्य के रूप में चुने गए हैं। यह सामान्य और स्वाभाविक मामला नहीं है। इसे उक्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स में निपटाया जाना चाहिए। एक हिस्ट्रीशीटर की आपराधिक पृष्ठभूमि होती है और कभी-कभी वह समाज में आतंक बन जाता है। [पैरा 69] [999-सी-एफ]

1.8 (999-सी-एफ) निष्कर्ष और निर्देश इस प्रकार हैंः

(i) निष्पक्ष विचारण का अधिकार अभियुक्त के परिप्रेक्ष्य में, जैसा कि माना जाता है, एकमात्र पूर्ण नहीं है। यह अपने दायरे में आता है और पीड़ितों और बड़े पैमाने पर समाज के

अधिकार को छीनता है। ये कारक सामूहिक रूप से कानून के शासन, यानी स्वतंत्र और निष्पक्ष मुकदमे का संकेत और गठन करेंगे।

(ii) निष्पक्ष सुनवाई, जिसे अनुच्छेद 21 के तहत एक महत्वपूर्ण अधिकार के रूप में संवैधानिक रूप में संवैधानिक रूप से संरक्षित किया गया है और वैधानिक संरक्षण भी दिया गया है पीड़ित(तों) के हित या समाज के सामूहिक/हित के साथ संघर्ष की भावना को विचार के लिए आमंत्रित करता है। जब वास्तविक धारणाओं से एक ही मौलिक अधिकार के संबंध में कोई अंतर-संघर्ष होता है, तो संवैधानिक न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे कुछ परिस्थितियों में, पूरे समाज के हित को ध्यान में रखते हुए संतुलन बनाए रखें, जब यह कानून के शासन को बढ़ावा देगा और उसे स्थापित करेगा। निष्पक्ष सुनवाई वह नहीं है जो अभियुक्त निष्पक्ष सुनवाई के नाम पर चाहता है, निष्पक्ष सुनवाई से उस अंतिम न्याय का शांति मिलनी चाहिए जिसे व्यक्तिगत रूप से मांगा जाता है, लेकिन यह अधीनस्थ है और तब लागू नहीं होगा जब निष्पक्ष सुनवाई के लिए आपराधिक कार्यवाही को स्थानांतिरित करने की आवश्यकता होती है।

(iii) किसी व्यक्ति का गलत कार्य निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का हनन नहीं कर सकता है क्योंकि यह विशेष रूप से आपराधिक मुकदमों में, कानून के शासन के अधिक निकट है। किसी अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई के मूल सिद्धांतों को त्यागने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

(iv) निष्पक्ष सुनवाई के मामले में दोनों दृष्टिकोणों के बीच संतुलन का निर्धारण संवैधानिक मानदंडों और संवेदनशीलता तथा व्यापक सार्वजनिक हित के पैमाने पर तौले गए तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

(v) 1950 के अधिनियम की धारा 3 अदालत की ओर से किसी व्यक्ति के स्थानांतरण का आदेश पारित करने में बाधा पैदा नहीं करती है। अभियुक्त या दोषी एक राज्य की एक जेल

से दूसरे राज्य की दूसरी जेल में जाता है क्योंकि यह केवल कार्यपालिका पर शक्ति के प्रयोग पर रोक लगाता है।

(vi) संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए न्यायालय संविधान के तहत प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों में कटौती नहीं कर सकता है और मौलिक नीतिगत सिद्धांतों पर आधारित मूल प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए आदेश पारित नहीं कर सकता है, फिर भी जब वर्तमान प्रकृति का कोई मामला सामने आता है, तो वह उचित निर्देश जारी कर सकता है ताकि आपराधिक मुकदमा कानून के अनुसार चलाया जाए। स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना इस न्यायालय का दायित्व और कर्तव्य है।

(vii) यह निवेदन कि यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत समानता के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अभियुक्त को सीवान जेल से किसी अन्य राज्य की जेल में स्थानांतरित नहीं कर सकता है, अस्वीकार्य है क्योंकि उक्त तर्क का मूल आधार गलत है, क्योंकि निष्पक्ष सुनवाई के मुद्दे को संबोधित करते समय, न्यायालय ने न्यायसभ्य के अधिकार क्षेत्र किसी भी प्रकार का प्रयोग नहीं कर रहा है। इक्विटी में अधिकार क्षेत्र। [पैरा 74] [1003-डी-एच; 1004-ए-एफ]

1.9 बिहार राज्य को निर्देश दिया गया है कि वह तीसरे प्रतिवादी को सीवान जेल, जिला सीवान से तिहाड़ जेल, दिल्ली स्थानांतरित करे और कैदी को उसके स्थानांतरण के लिए पूर्व सूचना देने के बाद तिहाड़ जेल के सक्षम अधिकारी दिल्ली में सौंप दे। सीवान जेल से तिहाड़ जेल तक तीसरे प्रतिवादी को ले जाने वाले अधिकारी पारगमन पर लागू नियमों का सख्ती से पालन करेंगे। कैदी और कोई विशेष विशेषाधिकार नहीं दिया जाएगा। इसलिए स्थानांतरण एक सप्ताह के भीतर हो जाएगा। इसके बाद, मुकदमे में लंबित मुकदमों के

संबंध में सुनवाई विचारण अदालत द्वारा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से किया जाएगा। [पैरा 75] [1004-एफ-एच]

मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम ठाकुर भरत सिंह **ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1170:[1967] एससीआर 454-लागू नहीं किया गया।**

प०बं० राज्य और अन्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा समिति, पश्चिम बंगाल और अन्य। **(2010) 3 एससीसी 571:[2010] 2 एस. सी. आर. 979-पर निर्भर था।**

चंद्रकेश्वर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य। **(2016) 9 एस. सी. सी. 443;** सुनील बत्रा (।।), बनाम दिल्ली प्रशासन **(1980) 3 एससीसी 488: [1980] 2 एस. सी. आर. 557;** महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम सईद सोहेल शेख और अन्य **(2012) 13 एससीसी 192:[2012] 11 एससीआर 916;** सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य। **(1978) 4 एससीसी 494:[1979] 1 एससीआर 392;** डी. भुवन मोहन पटनायक और अन्य बनाम एपी राज्य और अन्य। **(1975) 3 एससीसी 185: [1975] 2 एस. सी. आर. 24;** जे. जयललीता और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य। **(2014) 2 एस. सी. सी. 401;** मेनका संजय गांधी और एक अन्य बनाम रानी जेठमलानी **(1979) 4 एस. सी. सी. 167 [1979] 2 एस. सी. आर. 378;** मनु शर्मा बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) **(2010) 6 एस. सी. सी. 1:(2010) 4 एस. सी. आर. 103;** मोहम्मद हुसैन उर्फ जुल्फिकार अली बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार) दिल्ली **(2012) 9 एससीसी 408:[2012] 10 एससीआर 480;** ज़हिरा हबीबुल्ला एच शेख बनाम गुजरात राज्य **(2004) 4 एस. सी. सी. 158:(2004) 3 एससीआर 1050;** बबलू कुमार और अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य। **(2015) 8 एससीसी 787:(2015) 8 एस. सी. आर. 512;** हरियाणा राज्य "राम मेहर

और अन्य। **(2016) 8 एस. सी. सी. 762;** सकल पेपर (पी.) लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और एक अन्य **ए.आई.आर. 1962 एससी 305:(1962) एस. सी. आर. 842;** सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ (**2016) 7 एस. सी. सी. 221: (2016) 3 एस. सी. आर. 865;** श्री 'एक्स' बनाम अस्पताल 'जेड' **(1998) 8 एस. सी. सी. 296:[1998] 1 पूरक। एससीआर 723;** मा० स्टेनिस्लॉस बनाम एमपी राज्य और अन्य। **(1977) 1 एससीसी 677:(1977) 2 एस. सी. आर. 611;** विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। **(2016) 9 एस. सी. सी. 541;** प्रेम चंद गर्ग और एक अन्य बनाम आबकारी आयुक्त। **ए. आई. आर 1963 एस. सी 996:[1963] पूरक। एससीआर 885;** ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक और एक अन्य **(1988) 2 एस. सी. सी. 602:(1988) 1 पूरक। एससीआर 1;** आर. एस. नायक बनाम ए. आर. अंतुले **(1984) 2 एससीसी 183:(1984) 2 एस. सी. आर. 495;** सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन बनाम "यूनियन ऑफ इंडिया एंड एक अन्य **(1998) 4 एससीसी 409:(1998) 2 एस. सी. आर. 795;** दिल्ली न्यायिक सेवा संघ बनाम गुजरात राज्य और अन्य। **(1991) 4 एससीसी 406: (1991) 3 एससीआर 936;** रे, विनय चंद्र मिश्रा **(1995) 2 एससीसी 584:[1995] 2 एस. सी. आर. 638;** नरेंद्र चंपकलाल त्रिवेदी बनाम गुजरात राज्य **(2012) 7 एस. सी. सी. 80:[2012] 6 एससीआर 165;** विश्वेश्वरैया आयरन एंड स्टील लिमिटेड बनाम अब्दुल गनी और अन्य। **(1997) 8 एससीसी 713:[1997] 5 पूरक एससीआर आर. 119;** केशाभाई मालाभाई वनकर बनाम गुजरात राज्य **1995 पू० (3) एस. सी. सी. 704;** लक्ष्मीदास मोरारजी बनाम बेहरोज दराब मदन **(2009) 10 एस. सी. सी. 425:[2009] 14 एससीआर 777;** शम्सु सुहारा बीवी बनाम जी एलेक्स और एक अन्य **(2004) 8 एससीसी 569:(2004) 3 पूरक। एससीआर 653;** नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य। **(2014) 16 एससीसी 508:[2014] 12 एससीआर 453;** कल्याण चंद्र

सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पु यादव और एक अन्य **(2005) 3 एससीसी 284;** कर्नाटक राज्य बनाम एपी राज्य और अन्य। **(2000) 9 एससीसी 572:[2000] 3 एससीआर 301;** प०बं० राज्य और अन्य बनाम संपत लाल और अन्य। **(1985) 1 एससीसी 317:[1985] 2 एससीआर 256;** अशोक कुमार गुप्ता और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। **(1997) 5 एस.सी.सी. 201:[1997] 3 एस. सी. आर. 269-संदर्भित।**

<u>वाद विधि संदर्भ</u>

(2016) 9 एस. सी. सी. 443	**संदर्भित**	**कंडिका 12**
[1980] 2 एससीआर 557	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
[2012] 11 एससीआर 916	**संदर्भित**	**कंडिका 22.**
[1979] 1 एससीआर 392	**संदर्भित**	**कंडिका 23**
[1975] 2 एससीआर 24	**संदर्भित**	**कंडिका 25.**
(2014) 2 एस. सी. सी. 401	**संदर्भित**	**कंडिका 33 .**
[1979] 2 एससीआर 378	**संदर्भित**	**कंडिका 34**
[2010] 4 एससीआर 103	**संदर्भित**	**कंडिका 37**
[2012] 10 एससीआर 480	**संदर्भित**	**कंडिका 38**
[2004] 3 एससीआर 1050	**संदर्भित**	**कंडिका 38**
[2015] 8 एससीआर 512	**संदर्भित**	**कंडिका 42**
(2016) 8 एससीसी 762	**संदर्भित**	**कंडिका 43**

[1962] एससीआर 842	**संदर्भित**	**कंडिका 46**
[2016] 3 एससीआर 865	**संदर्भित**	**कंडिका 47**
[1998] 1 पूरक एससीआर 723	**संदर्भित**	**कंडिका 48**
[1977] 2 एससीआर 611	**संदर्भित**	**कंडिका 50**
(2016) 9 एस. सी. सी. 541	**संदर्भित**	**कंडिका 53**
[1967] एससीआर 454	**संदर्भित**	**कंडिका 56**
[2010] 2 एससीआर 979	**संदर्भित**	**कंडिका 57**
[1963] पूरक एससीआर 885	**संदर्भित**	**कंडिका 59**
[1988] 1 पूरक एससीआर	**संदर्भित**	**कंडिका 60**
[1984] 2 एससीआर 495	**संदर्भित**	**कंडिका 6**
[1998] 2 एससीआर 795	**संदर्भित**	**कंडिका 63**
[1991] 3 एससीआर 936	**संदर्भित**	**कंडिका 64**
[1995) 2 एस. सी. आर. 638	**संदर्भित**	**कंडिका 64**
[2012] 6 एससीआर 165	**संदर्भित**	**कंडिका 65**
[1997] 5 पूरक एससीआर 119	**संदर्भित**	**कंडिका 65**
1995 सप.(3) एससीसी 704	**संदर्भित**	**कंडिका 65**
[2009] 14 एससीआर 777	**संदर्भित**	**कंडिका 65**

[2004) 3 पूरक एससीआर 653 संदर्भित कंडिका 68

[2014] 12 एससीआर 453 संदर्भित कंडिका 69

(2005) 3 एससीसी 284 संदर्भित कंडिका 70

[2000] 3 एससीआर 301 संदर्भित कंडिका 72

[1985] 2 एससीआर 256 संदर्भित कंडिका 72

[1997] 3 एससीआर 269 संदर्भित कंडिका 12

आपराधिक मूल अधिकार-क्षेत्र 2016 की लिखित याचिका (आपराधिक) संख्या 132।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत

2016 की लिखित याचिका (आपराधिक) सं. 147।

शांति भूषण, वरिष्ठ अधिवक्ता, किसलय पांडे, अंकुर गोगिया, सुश्री मंजू जेटली, रोहित कुमार सिंह, सुश्री वर्तिका सेठ, सिद्धार्थ गर्ग, प्रशांत भूषण,। याचिकाकर्ता के लिए अधिकवक्ता

पी. एस. नरसिम्हा, ए. एस. जी., सुरेंद्र सिंह, शेखर नाफडे, वरिष्ठ अधिवक्ता। , शमिक संजनवाला, प्रदीप कुमार डे, टी. एन. राजदान, गोपाल सिंह, मनीष कुमार, धीरेंद्र सिंह परमार सुशील तोमर, सुश्री आभा आर. शर्मा, एम. शोएब आलम, सुश्री फौजिया शकील, उज्ज्वज सिंह, मोजाहिद करीम खान, उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय **दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति** द्वारा किया गया 1. प्रार्थनाओं की समानता को ध्यान में रखते हुए और इन रिट याचिकाओं में उजागर किए गए मुद्दों की समानता पर विचार करते हुए, अंततः उनकी एक साथ सुनवाई की गई। उठाए गए मुख्य

मुद्दे का निपटान इस एकल आदेश द्वारा किया जाता है। यह नोट करना आवश्यक है कि आशा रंजन द्वारा प्रस्तुत की गई रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132/2016 में सिवान जिला अन्तर्गत नगर थाना सिवान में भारतीय दंड संहिता की धारा 302/120(B) के साथ पठित धारा 34 के तहत दर्ज प्राथमिकी संख्या- 362/16 दिनांक 13.05.2016 को अनुसंधान भारत ग्रहण करने उसी थाना में समान अपराधों के लिए दर्ज मामले एवं सम्बंधित सारी कार्यवाहियों को एककर सिवान, बिहार से दिल्ली स्थानांतरित करने, प्राथमिकी संख्या- 362/16 दिनांक- 13.05.2016 से संबंधित अनुसंधान में स्थिति प्रतिवेदन की मांग करने याचिकाकर्त्ता एवं उसके परिवार के सदस्यों को उनकी सूरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उचित मआवजा प्रदान करने के संम्बन्ध में केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (सी०बी०आई०) को उचित निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना की गई है। आशा रंजन द्वारा पसंद की गई 2016 की धारा 132 के तहत, भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 34 के साथ पठित नागर थाना, सिवान, जिला सिवान के तहत पुलिस स्टेशन नगर थाना के तहत दिनांक 13.05.2016 की एफआईआर संख्या 362/16 के संबंध में केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) को उचित दिशा-निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना की गई है, ताकि याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त मुआवजा प्रदान किया जा सके। इसके अलावा, १३. ०५. २०१६ दिनांकित एफआईआर नं. ३६२/१६ में घोषित अपराधियों को शरण देने और शरण देने के लिए प्रत्यर्थी नं. ३ और ४ के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने का भी अनुरोध किया गया है.इस रिट याचिका में, बाद के चरण में, प्रतिवादी संख्या 3, एम. शहाबुद्दीन को बिहार की सीवान जेल से दिल्ली की जेल में स्थानांतरित करने के लिए 2016 की आपराधिक विविध याचिका संख्या 17101 दायर की गई है। इस मामले के लंबित रहने के दौरान, 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 147 दाखिल की गई कथित रिट याचिका में, प्रार्थना है कि प्रत्यर्थी नं. ३, एम. शहाबुद्दीन को बिहार राज्य के बाहर एक जेल में स्थानांतरित करने और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से उनके खिलाफ लंबित मामलों में

सुनवाई करने के लिए आगे निर्देश जारी करने का निर्देश जारी किया जाए.इस प्रकार, 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 147 में प्रार्थना दो गुना है और 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 में कई गुना है।

2. यहां यह कहना प्रासंगिक है कि दोनों मामले, जैसा कि पहले कहा गया है, एक साथ सुने गए थे और प्रत्यर्थी नं. ३, शहाबुद्दीन के खिलाफ लंबित मामलों को सीवान जेल से दिल्ली की जेल में स्थानांतरित करने और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से मुकदमे का संचालन करने के संबंध में पक्षकारों के वकील ने अदालत को संबोधित किया। जहां तक 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 में प्रतिवादी संख्या 4 के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने का संबंध है, इस पहलू पर सुनवाई स्थगित कर दी गई थी, जो 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 में 17 जनवरी, 2017 को पारित आदेश से स्पष्ट है। हम इसे पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैंः समझौता निम्न प्रकार था -

> “इस रिट याचिका में, हालांकि प्रार्थनाओं को कई तरीके से शामिल किया गया है, लेकिन मूल रूप से तीन प्रार्थनाएं हैं, यथा- कार्यवाही का सीवान, बिहार से दिल्ली स्थानांतरित करना दूसरा, कतिपय अपराधों की जांच करने के लिए सी. बी. आई. को निदेश जारी करना और तीसरा, प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 के विरुद्ध एफ. आई. आर. दर्ज करने के लिए समुचित निदेश पारित करना।
>
> जहां तक जांच करने के लिए सीबीआई को दिए गए निर्देश का संबंध है, इस न्यायालय ने पहले ही निर्देश जारी कर दिए थे और, इसलिए, कथित प्रार्थना अब जीवित नहीं है.
>
> जहां तक कार्यवाही के हस्तांतरण का संबंध है, जो आरोपी के हस्तांतरण से जुड़ा है, हम इस रिट याचिका और 2016 की रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 147 में दायर आपराधिक विविध याचिका में इस पर विचार करने जा रहे हैं।

जहां तक तीसरी प्रार्थना का संबंध है, प्रत्यर्थी नं. ४ के विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुरेन्द्र सिंह द्वारा इस आधार पर इसका गंभीर रूप से विरोध किया गया है कि एफ. आई. आर. दर्ज करने के लिए कोई वारंट या औचित्य नहीं है और, किसी भी स्थिति में, कोई मामला नहीं बनता है और जो कहा गया है वह केवल समाचार पत्रों में प्रकाशित तस्वीरों के आधार पर है.यदि ऐसा है तो, जहां तक इस प्रार्थना का संबंध है, इस पर एक और तारीख को विचार किया जाएगा क्योंकि हमने प्रतिवादी नं. ३ को सीवान जेल, बिहार से दूसरी जेल में स्थानांतरित करने के संबंध में आदेश सुरक्षित रखा है, जो 2016 की रिट याचिका (सीआरआई) संख्या 147 में प्रार्थना के समान है.उक्त पहलुओं से निपटने के लिए निर्णय दिया जाएगा और तीसरी प्रार्थना पर एक और दिन विचार किया जाएगा, जिसे बाद के चरण में निर्धारित किया जाएगा।"

3 इस प्रकार, वर्तमान में हमें तीसरे प्रत्यर्थी, एम. शहाबुद्दीन के सीवान जेल, बिहार से दिल्ली की जेल में स्थानांतरण के लिए 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 147 में किए गए प्रकथन और 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 में दायर आवेदन में किए गए प्रकथन को ध्यान में रखते हुए कार्रवाई करने की आवश्यकता है।

4. 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 का तथ्यात्मक मैट्रिक्स, जैसा कि सामने आया है, यह है कि 13.5.2016 को याचिकाकर्ता के पति, श्री राजदेव रंजन, वरिष्ठ रिपोर्टर (पत्रकार प्रभारी, दैनिक हिंदुस्तान, सिवान ब्यूरो, बिहार) की गोली मारकर हत्या कर दी गई थी क्योंकि उनके सिर और उनके शरीर के अन्य हिस्सों में पांच गोलियां लगी थीं और 13.5.2016 को एफआईआर संख्या 362/16 पीएस नगर थाना, जिला सिवान मेंभारतीय दंड संहिता की धारा 302/120 (बी) और 34 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दर्ज की गई।

5. 2016 को, याचिकाकर्ता ने पुलिस को सूचित किया कि एक कुख्यात अपराधी, शहाबुद्दीन और उसके गुर्गे उसके पति की हत्या में शामिल थे, लेकिन पुलिस ने जानबूझकर शहाबुद्दीन का नाम आरोपी व्यक्तियों की सूची में शामिल नहीं किया। इसके बाद, जैसा कि आज मामला है, उक्त मामले की जांच सीबीआई को हस्तांतरित कर दी गई है। इस बीच, कुछ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया है और कुछ ने हिरासत में आत्मसमर्पण कर दिया है।

6. याचिकाकर्ता के पति की हत्या के तथ्यात्मक खुलासे में एक कथा है जो वर्ष 2005 से चली आ रही है। यह दावा किया जाता है कि याचिकाकर्ता के पति, एक पत्रकार, ने शहाबुद्दीन की गंभीर और ठोस आपराधिक गतिविधियों से संबंधित विभिन्न समाचार रिपोर्ट लिखी थीं, जिन्होंने उन्हें और उनके परिवार के सदस्यों को मारने की धमकी दी थी.उन्होंने सीवान निवासी चंदा बाबू के तीन बेटों की हत्या के संबंध में विभिन्न खोजी समाचार लेख और रिपोर्ट लिखना जारी रखा, जिसके कारण अंततः शहाबुद्दीन की गिरफ्तारी हुई और मुकदमा पूरा होने के बाद उन्हें आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। यह ध्यान देने योग्य है कि कथित मामले की सुनवाई के दौरान, शहाबुद्दीन और उसके निशानेबाजों ने लगातार याचिकाकर्ता के पति को और उसके परिवार के सदस्यों को जान से मारने की धमकी दी थी.जैसा कि वर्णन को उजागर किया गया है, याचिकाकर्ता के पति ने समाचार लेखों को प्रकाशित करके एक श्रीकांत भारती की हत्या के बारे में प्रकाश डाला और उस स्तर पर 13.5.2016 को याची के पति को लगभग 7.15 बजे एक अज्ञात व्यक्ति से उसके मोबाइल पर फोन आया और उसके तुरंत बाद वह कार्यालय से चला गया। स्टेशन रोड की ओर बढ़ने लगा। लगभग 7.30 बजे उनकी गोली मारकर हत्या कर दी गई और अल्पकालिक धमकी वास्तविकता बन गई।

7. इसके पश्चात्, अन्वेषण के दौरान, दो अभियुक्त व्यक्तियों, मोहम्मद कैफ और मोहम्मद जावेद को घोषित अपराधी घोषित किया गया। 10 सितंबर, 2016 को शहाबुद्दीन को जमानत पर रिहा कर दिया गया और उपर्युक्त घोषित अपराधी उनकी कंपनी में देखे गए, लेकिन उदासीनता का राज रहा और भय ने शासन किया ताकि कोई भी पुलिस अधिकारी उन्हें गिरफ्तार करने का साहस न कर सके। 14 सितम्बर, 2016 को याचिकाकर्ता ने सभी मीडिया चैनलों पर बिहार के स्वास्थ्य मंत्री श्री तेज प्रताप यादव के साथ मोहम्मद कैफ और मोहम्मद जावेद की तस्वीरें देखीं।

8. अपनी और अपने दो नाबालिग बच्चों की सुरक्षा और हिफाजत के संबंध में असुरक्षित, आतंकित और असहाय महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का रुख किया है। जैसा कि बताया गया है, पति की मृत्यु उसे इस बात से आशंकित करती है कि शहाबुद्दीन उसके पूरे परिवार को नष्ट कर सकता है। याचिका में और विद्वत वकील द्वारा, कभी-कभी जोर-शोर से और कभी-कभी हताशा के साथ, उसकी पीड़ा व्यक्त की गई है।

9 इस मोड़ पर, हम 2016 की रिट याचिका (दांडिक) संख्या 147 में तथ्यों का उल्लेख कर सकते हैं। यह प्रकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी नं. ३ एक भयावह अपराधी-सह-राजनीतिज्ञ है जिसे पहले से ही हिस्ट्रीशीटर टाइप ए (जो सुधार से परे है) घोषित किया जा चुका है और अब तक उस पर 75 मामलों में मामला दर्ज किया गया है, जिनमें से 10 मामलों में वह दोषी करार किया गया है। दो मामलों में आजीवन कारावास का सामना कर रहा है और एक मामलों में वह 10 साल के कठोर कारावास का सामना कर रहा है 45 मामले विचारण के लिए लंबित है। उन्हें बीस मामलों में बरी कर दिया गया है। प्रतिवादी संख्या 3 के खिलाफ पहला आपराधिक मामला 1986 में शुरू किया गया था। आपराधिक गतिविधियां किसी न किसी रूप में जारी रहीं और 3 मई, 1996 को उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ तत्कालीन पुलिस अधीक्षक श्री एस. के. सिंघल, आईपीएस पर

अत्याधुनिक हथियारों से गोलियां चलाईं, जिसके लिए उन्हें 10 साल के कारावास की सजा सुनाई गई। इसके बाद, उसका नाम जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व अध्यक्ष श्री चंद्रशेखर की हत्या में सामने आया, जिनकी 31.3.1997 को सीवान में गोली मारकर हत्या कर दी गई थी। यह आरोप लगाया गया है कि उसने और उसकी निजी सेना ने 16 मार्च, 2002 को छापे मारने वाले दल पर गोली चलाई थी, जब उनके घर पर छापा मारा गया था और उस घटना में, सारण रेंज के पुलिस उप महानिरीक्षक, जिला दंडाधिकारी, सीवान और सिवान के पुलिस अधीक्षक के वाहनों को जला दिया गया। उसके घर से भारी मात्रा में गोला-बारूद बरामद किया गया और 2001 की प्राथमिकी संख्या 32 दर्ज की गई। 2005 में किए गए एक अन्य छापे में, तीसरे प्रतिवादी के घर से बड़ी संख्या में हथियार और गोला-बारूद बरामद किए गए और 2005 की प्राथमिकी संख्या 41 से 44 दर्ज की गई। नवंबर, 2005 में बिहार और दिल्ली पुलिस की संयुक्त टीम ने उसे विभिन्न मामलों में गिरफ्तार किया था। यह कहा जाता है कि उन्होंने 1990 से 2005 तक सीवान में समानांतर प्रशासन चलाया और मार्च 2007 में उन्हें 19 सितंबर, 1998 को सीवान में सीपीआई-एमएल कार्यालयों पर हमले के लिए दो साल की सजा सुनाई गई थी। इसके अलावा उसे फरवरी 1999 में सीपीआई (एमएल) कार्यकर्ता की हत्या करने के इरादे से अपहरण के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 364/34 के तहत 08.05.2007 को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, जिसके शव का कभी पता नहीं चला था।

10. यह बताया गया है कि अगस्त २००४ में, याचिकाकर्ता के तीन बेटों को प्रत्यर्थी नं. ३ के गुर्गों द्वारा उठाया गया और उनके पैतृक ग्राम प्रतापपुर ले जाया गया जहां उनके दो पुत्र, अर्थात्, गिरीश और सतीश तेजाब से भीग गए थे और उनका तीसरा बेटा, जो हत्या का गवाह बनने में कामयाब रहा। याचिकाकर्ता के दो बेटों का अपहरण करने आदि के कारण उनके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 341,323,380,364,435/34 के तहत आपराधिक मामला दर्ज किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी नं. 3 और अन्य के खिलाफ 04 जून, 2010 को

आरोप तय किए गए थे। अभियोजन पक्ष ने भारतीय दंड संहिता की धारा 120 बी के साथ पठित धारा 302 और 201 के तहत आरोपों को जोड़ने के लिए एक आवेदन दिया, जिसे विलंब के आधार पर शुरू में खारिज कर दिया गया था, लेकिन पटना उच्च न्यायालय के निर्देश के बाद, उपर्युक्त धाराओं के तहत आरोप दिनांक 18.04.2014 के आदेश द्वारा जोड़े गए थे। मुकदमेबाजी के दौरान, याचिकाकर्ता के तीसरे बेटे, राजीव रोशन, कथित मामले में एक महत्वपूर्ण चश्मदीद गवाह की हत्या कर दी गई थी और प्रत्यर्थी नं. ३, उसके पुत्र ओसामा और अन्य अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ एक एफआईआर नं. २२०/१४ दर्ज की गई थी.इस प्रकार, याचिकाकर्ता के तीन बेटों की हत्या कर दी गई.

11. 18. 05. 2016 को सीवान जेल में जिला प्रशासन द्वारा छापा मारा गया और सीवान के जिला दंडाधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में जेल के अंदर प्रत्यर्थी संख्या 3 के आचरण और जेल नियमों/नियमावली का उल्लंघन करते हुए जेल में वह जिन सुविधाओं का आनंद ले रहा था, उनके बारे में बताया और उन्हें सीवान से भागलपुर जेल में स्थानांतरित करने की सिफारिश की, जहां से उन्हें छह महीने के लिए भागलपुर जेल में स्थानांतरित कर दिया गया।

12. जैसा कि उक्त मामले में वर्णन आगे बढ़ेगा, उच्च न्यायालय ने एफआईआर संख्या 131/04 में प्रत्यर्थी संख्या 3 को 02.03.2016 को जमानत दे दी और एफआईआर संख्या 220/14 में 07.09.2016 को याचिकाकर्ता के तीसरे पुत्र की हत्या के मामले में जमानत दे दी। याचिकाकर्ता के साथ-साथ बिहार राज्य ने भी जमानत मंजूर करने वाले आदेशों को चुनौती दी। इस अदालत ने चंद्रकेश्वर **प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य** के मामले में जमानत के आदेशों को रद्द कर दिया जमानत देने वाले आदेश को, रद्द करते समय इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया हैः

"12. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध अभिलिखित अभिकथनों और समग्र तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से उस मामले के वर्तमान चरण को ध्यान में रखते हुए जिसमें आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित विचारों पर जमानत मंजूर करना न्यायोचित नहीं था। यह अभिकथन कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त उस तारीख को न्यायिक अभिरक्षा में था जिस तारीख को पहले मामले में हत्या की घटना हुई थी, उसे दोषी ठहराते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश ने मृतक के भाई का कथन अभिलिखित किया है कि उसने प्रत्यर्थी-अभियुक्त को अपराध में भाग लेते देखा था। हम इस पहलू पर आगे विस्तार से बताने से परहेज करते हैं क्योंकि निचली अदालत का कथित निर्णय और आदेश वर्तमान में उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील में न्यायाधीन है।

13. मामले के अभिलेखों पर सावधानीपूर्वक विचार करने और प्रश्नगत मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने और संबंधित मामलों में साबित आरोपों को ध्यान में रखते हुए और प्रत्यर्थी-अभियुक्त के विरुद्ध न्यायनिर्णयन के लंबित आरोपों को ध्यान में रखते हुए और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित के साथ-साथ जमानत के संबंध में प्रश्नगत निर्देशों और कानून की धारणा और नुस्खे को और संतुलित करते हुए, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर अन्यथा अपने विवेक के प्रयोग पर प्रभाव डालने वाले समग्र तथ्यों पर विचार किए बिना प्रत्यर्थी-अभियुक्त को जमानत प्रदान करने में गलती की है।"

पूर्वोक्त तथ्यात्मक आधार पर, याचिकाकर्ता ने तीसरे प्रतिवादी को सीवान जेल से बिहार राज्य के बाहर एक जेल में स्थानांतरित करने और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से लंबित मामलों में सुनवाई करने की मांग की है.

13. हमने श्री शांति भूषण और श्री दुष्यंत दवे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री किसले पांडे, याचिकाकर्ताओं के विद्वत अधिवक्ता, श्री पी० एस० नरसिम्हा, विद्वान अपर महाधिवक्ता और श्री पी. के. डे, सीबीआई की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर नफाड़े, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री एम. शोएब आलम, प्रतिवादी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता, श्री सुरेंद्र सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता साथ 2016 की याचिका (आपराधिक) संख्या 132 में प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वत अधिवक्ता श्री धीरेन्द्र परमार और श्री गोपाल सिंह, बिहार राज्य के विद्वान वकील को सुना है।

14. हमारे दिनांक 17.01.2017 के आदेश के अनुसार, 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 में 4 वें प्रतिवादी के खिलाफ शिकायत पर सुनवाई की जाएगी और इस निर्णय की घोषणा के बाद उस पर विचार किया जाएगा और इसलिए, हम उक्त रिट याचिका में दिए गए तर्कों और वर्तमान में उस संबंध में जवाबी हलफनामे में लिए गए रुख की जांच नहीं करेंगे।

15. मौलिक मुद्दा जिस पर हमें ध्यान देने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का उपयोग करते हुए किसी आरोपी को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित करने और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से लंबित मुकदमों के सीधे संचालन का निर्देश दे सकता है। कानून में कथित उल्लेख पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है, यह इस तरह के तरीके का सहारा लेने के लिए इस न्यायालय के न्यायिक विवेक के तथ्यात्मक परिदृश्य और संतुष्टि पर भी निर्भर करेगा.याचिकाकर्ताओं ने तीसरे प्रतिवादी की आपराधिक गतिविधियों, जिन मामलों में उसे शामिल किया गया है, उसे जिन दोषों का सामना करना पड़ा है, उस पर लगाए गए दंडादेशों, घोंघे की गति के बारे में जोर दिया है क्योंकि सीवान में शासन कर रहे आतंक के कारण, तीसरे प्रतिवादी को हिस्ट्री-शीटर टाइप-ए (जो सुधार से परे है) के रूप में घोषित करना, उसके

द्वारा निर्लज्जता और निर्लज्जता से दिखाया गया रवैया जिसने पीड़ितों और समाज को हिलाकर रख दिया है, जिस छूट के साथ जेल प्रशासन के साथ मिलीभगत की गई है, गवाहों को स्पष्ट रूप से डराना जो उनकी सच्चाई और न्याय की भावना को कमजोर करता है और जब वे अदालत में आते हैं तो नश्वर आतंक, नियमों और विनियमों का दुस्साहसिक उल्लंघन जो कैदियों या विचाराधीन कैदियों को नियंत्रित करने के लिए माने जाते हैं, जैसे कि वे अकल्पनीय हो गए हैं और जेल के अंदर बंदी कागज पर एक शब्द पर बना हुआ है, तीसरे प्रतिवादी के लिए अभी भी एक मुद्दा है और वह जेल प्रशासन से समानांतर आदेश जारी कर सकता है और वह अपने सनक और मौज पर स्वयं को अपराध में शामिल कर सकता है। याचिकाओं की ओर से श्री शांति भूषण और श्री दुष्यंत दवे द्वारा दिए गए तर्क, जो कभी-कभी कोई सोचने के लिए प्रवृत्त हो सकते हैं, में प्रस्तुत किया गया रुख आलंकारिक है, लेकिन याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ वकील और श्री किसलय। पांडे ने भारी पीड़ा के साथ अपना पक्ष रखा और अपने स्टैंड और समर्पण को मजबूत करने के लिए एक चार्ट दाखिल किया। न्यायालय ने सीबीआई की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पी०एस० नरसिम्हा और श्री पी. के. डे से भी एक चार्ट प्रस्तुत करने को कहा था। चार्ट उन मामलों को दर्शाता है जहां या तो प्रत्यर्थी नं. ३ को दोषी ठहराया गया है या बरी कर दिया गया है या उसके खिलाफ लंबित मामले दायर किए गए हैं.योग्यता पर टिप्पणी किए बिना, हम चार्ट को पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैंः

<u>दोषसिद्धि के मामले</u>

क्रम संख्या	प्राथमिकी थाना केस नं	अनुभाग के तहत	विचारण और दोषसिद्धि की स्थिति (सजा के साथ)/विचार ाधीन/दोष मुक्त (श्रृंखला में)	अपील की अवस्था	जिला/उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर करने की तिथि	जमानत मंजूर करने से पूर्व कारावास की अवधि
1	मुफासिल पीएस मामला संख्या 181/98 दिनांक 18.09.98	147/341/342/44 8/504 आईपीसी	2 वर्ष की कैद और 5000/- जुर्माना		जमानत 28.10.09 एचसी पटना द्वारा	0 दिन
2	सी-2 34/05 तारीख 07.04.05	जजमेंट 506 इपीसी	1 वर्ष की जेल और 1000 रुपये का जुर्माना		जमानत 28.10.09 विशेष न्यायालय द्वारा	3 साल, 8 महीने, 8 दिन

3	मुफासिल पीएस मामला 61/90 दिनांक 12.04.90	363/365 आईपीसी	3 साल की सजा		जमानत 11.03.11 विशेष कोर्ट सिवान द्वारा	0 दिन
4	हुसैनगंज पीएस मामला संख्या 14/99 दिनांक. 07. 02.99	364/34 आईपीसी	जीवन और 10,000/- रुपये		जमानत 21.10.09 एचसी पटना द्वारा	3 वर्ष 3 मॉन
5	दरौली पीएस सी. सं. 34/96 दिनांकः 04. 05.96	307/353/3 4 आईपीसी	10 वर्ष और 2000/- रुपये		जमानत 21.10.09 एचसी पटना द्वारा	2 वर्ष 1 मॉन 21 दिन
6	हुसैनगंज बनाम केस नं. 44/05	251-बी) ए/26/35 शस्त्र	3 वर्ष की कैद और 5000/-		जमानत 20.10.09 एचसी पटना	2 वर्ष 9 से 10 दिन

	तारीख 24.04.05	अधिनियम	जुर्माना		द्वारा	
7	हुसैनगंज बनाम मामला संख्या 42/05 दिनांकः 24.04.05	414 आईपीसी और 25 (आई-बी)/26 शस्त्र अधिनियम	5 साल की सजा		जमानत 16.07.11	5 वर्ष 8 मॉन 9 दिन
8	मुफासिल बनाम मुकदमा संख्या 131/04 दिनांकः 16.08.04	364/336/302/30 1 आईपीसी	उम्र कैद की सजा		जमानत 14.07.16 एचसी पटना द्वारा	6 वर्ष 10 मॉन 5 दिन
9	हुसैनगंज बनाम केस नं. 41/05 तारीखः 24.04.05	411/414 आईपीसी	3 साल की सजा		जमानत 28.10.09 एचसी पटना द्वारा	3 साल 11 महीने 21 दिन

10	पचरूही बनाम मामला संख्या 102/04 तारीख 18.10.04	392/411 आईपीसी	इस मामले का विलय हुसैनगंज मामले में कर दिया गया है।		-डी ओ-	

<u>बरी किए गए मामले</u>

1	सीवान टाउन पीएस मामला संख्या 217/85 दिनांक 02.09.85	आईपीसी की धारा 307/323/341/34 और 27 शस्त्र अधिनियम
2	सीवान टाउन केस नंबर 77/86 दिनांकः 08. 04. 86	394 आईपीसी
3	सीवान टाउन पुलिस स्टेशन मामला संख्या 79/86 दिनांक 10.04.86	399/402/411/412/414/216 ए आईपीसी और 25 ए/26/35 शस्त्र अधिनियम
4	मुफासिल पुलिस स्टेशन मामला संख्या 228/86	147/148/149/325/302 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम 3/5 विस्फोटक अधिनियम
5	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन मामला	363/34 आईपीसी

	संख्या 125/88, दिनांक 12.09.88	
6	सीवान टाउन थाना मामला संख्या 183/88 दिनांकः 10. 09. 88	307 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
7	सीवान टाउन थाना मामला संख्या 57/89 दिनांकः 15. 03. 89	307/302/34 आईपीसी और 3/4 विस्फोटक अधिनियम
8	मुफासिल पीएस मामला 91/89	आईपीसी की धारा 307/34 और 27 शस्त्र अधिनियम
9	मैरवा (जिरादेई) पुलिस थाना मामला संख्या 137/89 दिनांकः 21. 11. 89	147/148/149/307/348/302/34 आईपीसी और 3/4 विस्फोटक अधिनियम
10	सीवान टाउन पुलिस स्टेशन मामला संख्या 108/94/दिनांकः 22. 05. 94	147/148/149/324/307 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
11	पचूर्खी पुलिस स्टेशन मामला संख्या 60/945 दिनांक 13.01.94	147/323/427/379 आईपीसी
12	सीवान टाउन थाना मामला संख्या 155/94 दिनांकः 08.08.94	302/307/324/120 (बी)/34 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
13	पचरुखी पुलिस स्टेशन मामला संख्या 07/95 दिनांक 20.01.95	143/144/427/435 आईपीसी

14	पचरुखी पुलिस स्टेशन मामला 08/95 दिनांक 20.01.95	302/34 आईपीसी
15	सीवान टाउन पुलिस स्टेशन 11/96 दिनांकः 18. 01. 96	341/342/323/307/34 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
16	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन मामला संख्या 99/96 दिनांक 02.05.96	147/148/149/324/307/302 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
17	अंदार पीएस मामला संख्या 32/96 दिनांक 02.05.96	147/148/149/324/307/302 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
18	अंदार पीएस मामला संख्या 32/96 दिनांक 02.05.96	147/148/149/324/307 आईपीसी
19	सीवान टाउन थाने का मामला संख्या 205/90 दिनांकः 03. 09. 90	365/387 आईपीसी
20	मुफ्फसिल थाने का मामला संख्या 52/88	147/148/324/323/307/379 आईपीसी

<u>लंबित मामले</u>

सीएस नं	एफआईआर थाना केस नं/दिनांक	अनुभाग के तहत
1	हुसैनगंज - 43/05 - 24.04.05	25 (I-B) 25 शस्त्र अधिनियम
2	सिवान टाउन - 99/05 - 22.04.05	420/467/468
3	मुफासिल पीएस, 97/07 और 02.05.07 न्याय	353/506 आईपीसी
4	हुसैनगंज पीएस 134/06 13.10.05	392/411 आईपीसी
5	मुफासिल पीएस, 96/07 और 02.05.07	353/506 आईपीसी
6	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन 39/05	25 (I-B) a/26 शस्त्र अधिनियम, 120B

	24.04.05	
7	मुफासिल पीएस 289/10 22.07.10	414/353 आईपीसी
8	अंदरप्स, 41/99, और 05.07.99	14/248/149/341/324 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
9	सी-2; 54/05; 25.04.05	9/44/46/48/49/49 (बी)/50/51
10	हुसैनगनी 114/05 26.08.05	25 (1-बी) शस्त्र अधिनियम (1-बी) (एच) 25 (4) 26 (1) 35 शस्त्र अधिनियम
11	सीवान टाउन - 11/01 - 18.01.01	147/148/186/353/452/506 आईपीसी
12	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन 48/05 24.04.05	379 आईपीसी और 39/44 विद्युत अधिनियम
13	सी-2; 27/09; 16.03.09	52 कैदी अधिनियम, 1984
14	सीवान रेल	भारतीय दंड संहिता की धारा

	पीएस 33/97	147/148/149/341/323/353/504 @27 आर्म्स एक्ट
15	मुफ्फासिल पीएस, 131/06 सैक्रेड 17.06.06	189/353/506 आईपीसी
16	मुफासिल पीएस 225/11 अमृत 12.07.11	353/504/506/34
17	सीवान टाउन - 229/05 - 25.10.05	341/302/307/34 आईपीसी
18	मुफासिल पुलिस स्टेशन 333/11	188 भारतीय दंड संहिता और 52 कैदी अधिनियम 1894 भारतीय दंड संहिता की धारा 420/468/471 के तहत
19	मफस्सिल पीएस, 56/07 सिलीज 20.03.07	147/149/341/342/323/307/337 आईपीसी
20	अन्दर पीएस, 10/98 - 29.01.98	147/148/149/341/506 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम

21	टाउन पीएस 220/14 अमृत 17.06.14	302/34/120 बी आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
22	सी-2 62/07 03.08.07	52 कैदी अधिनियम, 1894
23	सी-2 - 67/08 - 01.09.08	52 कैदी अधिनियम, 1894
24	मुफासिल पीएस 226/13 01.06.13	188 भारतीय दंड संहिता और 52 कैदी अधिनियम
25	मुफासिल पुलिस स्टेशन 182/08 दिनांक 02.08.08	341/504/353/34 आईपीसी
26	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन 34/01 17.03.01	454/380 आईपीसी
27	सीवान टाउन पीएस 33/01 अगेंस्ट 17.03.01	धारा 147/148/149/307/353/323/333/379/380/447/452/427/435/120-बी आईपीसी और शस्त्र अधिनियम

28	मुफासिल पीएस सैनेगल 08/01 13.01.01	364 इपीसी
29	बरहारियाप - 82/04 दिनांक 08.08.04	302/120-बी, 363 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
30	हुसैनगंज पीएस	302/120-बी
31	मुफासिल पीएस, 150/09 24.06.09	307 आईपीसी
32	सीवान टाउन - 20/02 - 05.03.02	302/120 (एनबी)/34 आईपीसी
33	सीवान टाउन - 23/05 - 10.02.05	148/149/341/379/364 आईपीसी
34	सीवान टाउन - 102/98 - 13.07.98	302/34 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
35	मुफासिल पीएस 32/01	आईपीसी की धारा 307/149 और @7 आर्म्स एक्ट

	15.03.01	
36	सीवान टाउन - 145/98 - 09.09.98	147/148/149/307/323,341/353/379/504 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
37	सीवान कस्बे का नाम - 147/98 - 09.98	आईपीसी की धारा 307/139 और 27 शस्त्र अधिनियम
38	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन 31/01 17.03.01	25 (1-बी) शस्त्र अधिनियम और 3/4 विस्फोटक अधिनियम और 147/148/149/324/307/302/353/3333/335/120-बी आईपीसी
39	हुसैनगंज पीएस 32/01 न्याय 17.03.01	भारतीय दंड संहिता की धारा 147/148/120-बी/435/149/333/353/307 और शस्त्र अधिनियम
40	हुसैनगंज पुलिस स्टेशन 33/01 17.03.01	25 (1-ए)/26/27/35 शस्त्र अधिनियम और 3/5 विस्फोटक अधिनियम
41	सीवान टाउन - 69/06 - 13.03.06	383/34 आईपीसी
42	सीवान कस्बे की	302/307/120-बी/34 आईपीसी और 27 शस्त्र

	संज्ञा 54/97 संज्ञा 31.03.97	अधिनियम
43	मीरगंज (गोपालगंज) पुलिस स्टेशन 119/91 - 31.05.91	302/34 आईपीसी और 27 शस्त्र अधिनियम
44	जुगसलाई (जमशेदपुर) पुलिस स्टेशन 182/05	176/177/179/419/420/468/201/120-बी आईपीसी
45	केएमपी (मुजफ्फरपुर) 182/05	176/177/179/419/420/468/201/120-बी आईपीसी

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ मामलों में उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई पर रोक लगा दी गई है और कुछ मामलों में जमानत दे दी गई है।

16. उपर्युक्त चार्ट के परिशीलन पर, यह दोपहर के रूप में स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी नं. 3 कई मामलों में शामिल रहा है कि पुत्र खिलाफ कम से कम 75 मामला दर्ज किया गया है, जिनमें से उसे 10 मामलों में दोषी ठहराया गया है कि वह दो में आजीवन कारावास का सामना कर रहा है, जिसमें याचिकाकर्त्ता के दो बेटों की हत्या का मामला और एक में 10 साल का सक्षम कारावास शामिल है, कि 45 लंबित मामलों में से कम से कम 21 ऐसे हैं

जिनमें 9 हत्या के लिए और 4 हत्या के प्रयास के लिए हैं कि याचिकाकर्त्ता को दो बेटों की हत्या के अलावा कुल 45 लंबित मामलों में से कम से कम 15 उसके खिलाफ जेल में रहते हुए दर्ज किये गए हैं और इन 15 लंबित मामलों में से एक याचिकाकर्त्ता के तीसरे बेटे की हत्या का है और दो हत्या के प्रयास के लिए है। उन्हें हिस्ट्री शीटर टाइप 'ए' (जो सुधार से परे है) घोषित किया गया है।

17. चार्ट का उल्लेख करते हुए, श्री भूषण द्वारा यह आग्रह किया जाता है कि तीसरा प्रत्यर्थी ऐसी प्रकृति का अपराधी है जो सुधार से परे है और बिहार राज्य में उसका प्रभाव स्पष्ट है। उसके द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि कथित प्रतिवादी दो बार विधानसभा के सदस्य और चार बार सीवान से संसद सदस्य रहे हैं। श्री भूषण और श्री दवे का कहना है कि ऐसी स्थिति में न्याय प्राप्त करना बिल्कुल कठिन है, बल्कि असंभव है क्योंकि अत्यधिक भय व्याप्त है और भय पैदा करने वाला आतंक इलाके में सबसे ऊपर है। ऐसे माहौल में, न्याय पहली दुर्घटना होगी और इसलिए, संवैधानिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में, इस न्यायालय को तीसरे प्रतिवादी को सीधे बिहार के बाहर एक जेल में स्थानांतरित करना चाहिए जहां वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग द्वारा मुकदमा संभव होगा। श्री भूषण ने अपनी दलीलों के दौरान कुछ अधिकारियों की सराहना हमसे की है, जिनका हम प्रासंगिक स्तर पर उल्लेख करेंगे। बिहार राज्य के विद्वत वकील श्री गोपाल सिंह ने प्रस्तुत किया कि बिहार राज्य कानून के शासन के लिए प्रतिबद्ध है और इस न्यायालय के निर्देशों को पूरा करने का धार्मिक रूप से प्रयास करेगा कि न्यायालय अंततः निष्पक्ष विचारण की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए निर्देश दे सकता है।

18. तीसरे प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नफाडे यह दलील देंगे कि किसी अभियुक्त को बिहार राज्य से राज्य के बाहर जेल में स्थानांतरित करने के प्रयोजन के लिए कानून पुस्तिका में ऐसी विधि अवश्य होनी चाहिए जो ऐसे अंतरण की

अनुज्ञा दे। किसी कानून के अभाव में इस तरह के हस्तांतरण के लिए कोई निर्देश जारी करना कानून में स्वीकार्य नहीं है। श्री नफाडे के अनुसार, राज्य के बाहर एक जेल में स्थानांतरण द्वारा, अनुच्छेद 14 और 21 के तहत एक विचाराधीन कैदी के अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है और जब तीसरा प्रतिवादी 45 मामलों में मुकदमे का सामना कर रहा हो, तो उसका स्थानांतरण इस तरह से निर्देशित नहीं किया जाना चाहिए। विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता आग्रह करेंगे कि यदि किसी राज्य का कोई कार्य किसी व्यक्ति के अधिकार के प्रतिकूल है तो उसे कानून के प्राधिकार द्वारा समर्थित होना चाहिए और उसके अभाव में इस तरह के कार्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्री नफाडे ने आगे कहा कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए स्थानांतरण आदेश पारित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह संबंधित वैधानिक कानून के मूल प्रावधानों से असंगत होगा। श्री नफाडे द्वारा यह प्रचार किया गया है कि अनुच्छेद 142 के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्तियां पूर्ण न्याय करना है, लेकिन यह विधायी स्वरूप धारण नहीं कर सकती है, क्योंकि कानून न्यायनिर्णयन से बिल्कुल अलग है। उनका आगे कहना है कि अनुच्छेद 142 इस न्यायालय को कानून लागू करने का अधिकार नहीं देता है और तीसरे प्रतिवादी को बिहार राज्य से बाहर किसी अन्य जेल में स्थानांतरित करना न्यायालय द्वारा कानून को लागू करना और फिर कानून को लागू करने के लिए न्यायिक शक्ति का उपयोग करने के बराबर होगा।

19. विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता यह प्रस्तुत करेंगे कि तीसरे प्रत्यर्थी को उसके गृह राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित करने से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसके अधिकार पर प्रभाव पड़ेगा और ऐसा आदेश केवल कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही संभव है और किसी कानून के अभाव में, याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत किया गया निवेदन पूरी तरह से असमर्थनीय है। याचियों के विद्वत वरिष्ठ वकील द्वारा आलंकारिक तर्कों की कड़ी आलोचना करते हुए, श्री नफाडे द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि तर्क मौलिक रूप से समभाव पर आधारित है जिसे न्याय का रंग दिया गया है और मुकदमे में

निष्पक्षता दी गई है, इस बुनियादी सिद्धांत को अमान्य कर दिया गया है कि समभाव को वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए। इसके अलावा, तीसरे प्रतिवादी को, एक आरोपी के रूप में, अनुच्छेद 21 के तहत निष्पक्ष रूप से मुकदमा चलाने का अधिकार है और याचियों के कहने पर उसके अधिकार को नष्ट या कम नहीं किया जा सकता है.विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता यह आग्रह करेंगे कि वर्तमान स्वरूप के किसी मामले में अधिकारों के संतुलन का प्रश्न ही नहीं उठता है, क्योंकि अधिकारों के संतुलन का सिद्धांत वहां लागू होता है जहां दो मौलिक अधिकार प्रतिस्पर्धा करते हैं, लेकिन यहां यह तीसरे प्रतिवादी का अधिकार है जिसे अनुच्छेद 21 के तहत संरक्षित किया जाना है, जिसे इस न्यायालय द्वारा अत्यधिक पोषित मूल्य दिया गया है, और न्यायालय उक्त अधिकार का एकमात्र संरक्षक है।

20. पहला, हम इस क्षेत्र में सांविधिक विधि का सर्वेक्षण करेंगे। कैदी अधिनियम, 1900 को न्यायालय के आदेश द्वारा बंदी बनाए गए कैदियों से संबंधित कानून को समेकित करने के लिए अस्तित्व में लाया गया था। चूंकि कैदी अधिनियम, 1900 की धारा 29 एक अलग क्षेत्र को कवर करती है, इसलिए संसद ने कैदियों के हस्तांतरण अधिनियम, 1950 (संक्षेप में, 1950 अधिनियम) को लाना उचित समझा। यह बताना आवश्यक है कि किस बात ने संसद को उक्त कानून लाने के लिए मजबूर किया। 1950 के अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का कथन इस प्रकार हैः-

> “कैदी अधिनियम, 1900 की धारा 29 में अन्य बातों के साथ-साथ संविधान की पहली अनुसूची के भाग ए, सी और डी में राज्यों के बीच कैदियों के अंतरराज्यीय अंतरण का प्रावधान है। तथापि, न तो कैदी अधिनियम, 1900 में और न ही उन राज्यों के कैदियों को भाग-ख राज्यों की जेलों में और विपर्युक्त राज्यों के कैदियों को अंतरित करने के लिए किसी अन्य विधि में कोई प्रावधान था। ऐसे मामले उत्पन्न हो

सकते हैं जहां भाग 'क', 'ग' और 'घ' राज्यों से भाग 'ख' राज्यों में कैदियों के अंतरण के लिए हटाए जाने को प्रशासनिक रूप से वांछनीय या आवश्यक समझा जाए।

21. 1950 के अधिनियम की धारा 3 इस प्रकार हैः- "3. कैदियों को एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजना(1) जहां कोई व्यक्ति किसी राज्य की जेल में बंद है।

(क) मृत्युदंड के अधीन, या

(ख) कारावास या निर्वासन के दंडादेश के अधीन या उसके बदले में, या

(ग) जुर्माने के भुगतान में चूक होने पर, या

(घ) शांति बनाए रखने के लिए या अच्छे व्यवहार को बनाए रखने के लिए सुरक्षा देने के व्यतिक्रम में

(ख) उस राज्य की सरकार, किसी अन्य राज्य की सरकार की सहमति से, आदेश द्वारा, उस कैदी को उस कारागार से दूसरे राज्य के किसी कारागार में ले जाने का उपबंध कर सकेगी.

जिस कारागार में किसी व्यक्ति को उपधारा (1) के अधीन हटाया गया है, उसका प्रभारी अधिकारी उसे, जहां तक हो सके, उस न्यायालय के जिसके द्वारा ऐसा व्यक्ति सौंपा गया है, किसी रिट, वारंट या आदेश की अनिवार्यता के अनुसार या जब तक ऐसे व्यक्ति को विधि के सम्यक अनुक्रम में उन्मोचित या हटाया नहीं जाता है, प्राप्त करेगा और निरुद्ध रखेगा।"

22. हमें जांच करने की आवश्यकता है, जब उक्त प्रावधान केवल कुछ परिस्थितियों में राज्य के बाहर हस्तांतरण की अनुमति देता है और प्रत्यर्थी नं. 3 का मामला किसी भी परिस्थिति में नहीं आता है, तो क्या अभियुक्त प्रत्यर्थी को बिहार की जेल से दूसरे राज्य में

स्थित किसी अन्य जेल में स्थानांतरित किया जा सकता है। यह भी ध्यान देना जरूरी है कि क्या हस्तांतरण से संविधान के अनुच्छेद 21 के मूल सिद्धांत को नुकसान पहुंचेगा और क्या इस तरह के अधिकार को स्थापित करने की अनुमति दी जानी चाहिए? इस संबंध में हमने सुनील बत्रा (II) बनाम दिल्ली प्रशासन 2 और महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम सईद सोहेल शेख और अन्य की सराहना की सिफारिश की है।

23. सुनील बत्रा (II) (उपर्युक्त) वाले मामले में, एक अन्य कैदी पर हेड वार्डर द्वारा क्रूर हमले की शिकायत करने वाले कैदी से एक पत्र प्राप्त होने पर एक रिट याचिका दर्ज की गई थी। पत्र को संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक कार्यवाही के रूप में रूपांतरित किया गया था। न्यायालय ने सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य के मामले में निर्दिष्ट निर्णय में यह मत व्यक्त किया गया है कि उक्त निर्णय बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट को एक बहुमुखी जीवंतता और परिचालन उपयोगिता प्रदान करता है जो छिपी हुई सेल की गोपनीयता के भीतर भी स्वतंत्रता के गढ़ के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए कानून की उपचारात्मक उपस्थिति बनाता है। न्यायालय ने कैदियों के अधिकार और यातना के संदर्भ में परिप्रेक्ष्य के बारे में चर्चा करते हुए सर विंस्टन चर्चिल के एक उद्धरण को दोहराया जिसका उल्लेख सुनील बत्रा (ऊपर) में किया गया है। उक्त पैरा इस प्रकार हैः-

> “अपराध और अपराधियों के साथ व्यवहार के संबंध में जनता का मनोदशा और स्वभाव किसी भी देश की सभ्यता की सबसे अचूक परीक्षणों में से एक है। राज्य के खिलाफ अभियुक्तों और यहां तक कि दोषी अपराधी के अधिकारों की शांत निष्पक्ष मान्यता-दंड के कर्तव्य के साथ आरोपित सभी लोगों द्वारा समान दिल की चाहत-उन लोगों को परिश्रम की दुनिया में पुनर्वास करने की इच्छा और उत्सुकता, जिन्होंने सजा के कठोर सिक्के में अपना उचित भुगतान किया हैःउपचारात्मक और पुनरुत्पादक प्रक्रियाओं की खोज की दिशा में अथक प्रयासःयह अटूट विश्वास जो कि

एक खजाना है, अगर आप केवल इसे पा सकते हैं, तो हर आदमी के दिल में है। ये ऐसे प्रतीक हैं, जो अपराध और आपराधिक व्यवहार में किसी राष्ट्र की संचित शक्ति को चिह्नित करते हैं और मापते हैं, और इसमें जीवित गुण का संकेत और प्रमाण हैं।"

हम तुरंत कह सकते हैं कि हम बिना किसी प्रतिबंध के एक ही विचार साझा करते हैं।

24. न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेद 21 का आयात था कि कैदी का संरक्षण अनुच्छेद 32 के अधीन संरक्षण के अधिकारों के भीतर आएगा। तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तथ्यों को निर्दिष्ट किया और तत्पश्चात् कैदियों के अधिकारों का उल्लेख करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त कियाः-

"40. कैदी विशेष रूप से और दोहरे रूप से विकलांग हैं। एक बात तो यह है कि अधिकांश कैदी निर्धनता, साक्षरता, सामाजिक स्तर और इसी तरह के अन्य क्षेत्रों में कमजोर वर्ग से आते हैं। दूसरा, जेल घर एक घिरी हुई दुनिया है जो मानव दुनिया के लिए असंबद्ध है, जिसके परिणामस्वरूप बंधुआ कैदी अदृश्य हैं, उनकी आवाजें सुनाई नहीं देती हैं, उनके अन्याय की अनदेखी की जाती है। इसलिए यह अनिवार्य है, जैसा कि अनुच्छेद 21 में निहित है, कि जीवन या स्वतंत्रता को निष्पक्ष प्रक्रिया के नए प्रवाह के बिना निलंबित संजीवता में नहीं रखा जाएगा या पशु अस्तित्व में नहीं रखा जाएगा। खड़क सिंह और मेनका गांधी के मामले में अनुमोदित फील्ड, जे. द्वारा दिए गए जीवन के अर्थ में निम्नलिखित उद्धरण दिए गए हैंः

> केवल जानवरों के अस्तित्व से कुछ अधिक। इसके अभाव के विरुद्ध निषेध उन सभी अंगों और क्षमताओं तक फैला हुआ है जिनके द्वारा जीवन का आनंद लिया जाता है। यह प्रावधान किसी हाथ या पैर को काटकर शरीर को विकृत करने या आंख को बाहर निकालने या शरीर के किसी अन्य अंग को

नष्ट करने पर रोक लगाता है, जिसके माध्यम से आत्मा बाहरी दुनिया के साथ संचार करती है।

इसलिए, जेलों के अंदर व्यक्ति हैं और उनका व्यक्तित्व, यदि कानून तोड़ने वाले कानून-रक्षकों द्वारा अपंग किया जाता है, तो इस न्यायालय की रिट द्वारा इस तरह के अपराध से मना किया जा सकता है। अतः, कैदियों के साथ व्यवहार में उचित प्रक्रिया के लिए कानून के प्रावधान तक पहुंच के एक अन्य आयाम की आवश्यकता है, जो उन व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सीमित करता है जिन्हें जेल के दरवाजों से बाहर निकलने से रोका जाता है।"

25. विद्वत न्यायाधीशों ने इस स्थिति की पुष्टि की, जैसा कि न्यायमूर्ति चंद्रचूड़, (जैसा कि उस समय हिज लार्डशिप था) द्वारा डी. भुवन मोहन पटनायक और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में अभिनिर्धा्धारित किया गया है।

"केवल दोषसिद्धि के कारण दोषी उन सभी मूल अधिकारों से वंचित नहीं हैं जो अन्यथा उनके पास होते हैं। कानून के प्राधिकार के तहत, एक दोष सिद्धि के बाद, एक जेल-घर में जीने की बाध्यता अपने बल से भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने के अधिकार या किसी पेशे का 'अभ्यास' करने के अधिकार जैसी मौलिक स्वतंत्रता से वंचित करती है। इस प्रकार पेशे से जुड़े व्यक्ति की सजा काटने के दौरान सलाह-मशविरा करने का उसका अधिकार समाप्त हो जाएगा। लेकिन संविधान अन्य स्वतंत्रताओं की गारंटी देता है जैसे कि संपत्ति को अर्जित करने, रखने और बेचने का अधिकार जिसके प्रयोग में कारावास कोई बाधा नहीं हो सकती है। इसी प्रकार, कोई दोषी भी संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत इस बहुमूल्य अधिकार का हकदार है कि उसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"

26. अंततोगत्वा, उन्होंने यह अधिकथित कियाः

"48 शारीरिक हमलों के अलावा, दंड कई परिवर्तनशील रूप ले सकती है। कैदी को एकांत कोठरी में धकेलना, आवश्यक सुविधाओं से इंकार करना और कभी-कभी इससे भी अधिक भयावह यह होता है कि उसे दूर की जेल में स्थानांतरित कर दिया जाता है, जहां उसके मित्रों या संबंधियों के समाज से मिलने-जुलने पर रोक लगा दी जाती है, अपमानजनक श्रम का आवंटन किया जाता है, उसे हताशा में या कठिन गिरोह में डाल दिया जाता है इत्यादि जो उसी तरह दंडात्मक हो सकते हैं। इस तरह की प्रत्येक पीड़ा या कमी व्यापक अर्थ में स्वतंत्रता या जीवन का उल्लंघन है और इसे तब तक कायम नहीं रखा जा सकता जब तक अनुच्छेद 21 का समाधान नहीं हो जाता। एक सुधारात्मक कानूनी प्रक्रिया होनी चाहिए, जो निष्पक्ष इस तरह का उल्लंधन मनमाना होगा, अनुच्चछेद 14 के तहत अगर यह अनिर्देशित विवेक पर निर्भर है, अनुचित है, अनुच्छेद 19 के तहत अगर यह अपरिवर्त्तनीय और अनुपयोगी है और अनुचित अनुच्छेद 21 के तहत प्राकृतिक न्याय का अल्लंघन करता है। बत्रा-1 में दिए गए दिशानिर्देशों की श्रृंखला, जिन्हें हम पहले फैसले में अपनाते हैं, में कुछ चरणों में सुनवाई, एक वरिष्ठ अधिकारी द्वारा समीक्षा और प्रारंभिक न्यायिक विचार का प्रावधान है ताकि कार्यवाहियां कैसर से कैसर तक न पहुंच सकें। हम इस उद्देश्य के लिए उन मानदंडों और संस्थागत प्रावधानों का कड़ाई से अनुपालन करते हैं।"

27. इस पहलू पर काफी जोर दिया गया था कि किसी दूर के कारागार में अंतरण से जहां मुलाकात या मित्रों या नातेदारों का समाज टूट जाता है, एक पीड़ा या संक्षिप्तता है और यह व्यापक अर्थ में स्वतंत्रता या जीवन का उल्लंघन है और इसे तब तक बनाए नहीं रखा जा सकता है जब तक अनुच्छेद 21 का समाधान नहीं हो जाता। यह एक सुसंगत पहलू होगा जैसा कि सईद सोहेल शेख (पूर्वोक्त) में अभिनिर्धारित किया गया है। उक्त मामले में,

न्यायालय ने कैदी अधिनियम, 1900 की धारा 29 का उल्लेख किया। उक्त उपबंध का निर्वचन करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

> "20. धारा 29 की उप-धारा (2) पर निर्भरता, इस तर्क के समर्थन में कि एक विचाराधीन कैदी का हस्तांतरण स्वीकार्य है, हमारी राय में अपीलकर्ताओं के लिए कोई सहायता नहीं है.इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपधारा (2) कारागार महानिरीक्षक को किसी स्थानांतरण का निदेश देने के लिए सशक्त करती है लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा कोई स्थानांतरण किसी कैदी का है जो धारा 29 की उपधारा (1) में उल्लिखित परिस्थितियों में सीमित है। यह ''एक जेल में'' बंद उपरोक्त किसी कैदी शब्दों के इस्तेमाल से स्पष्ट है इस अभिव्यक्ति से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि उप-धारा (2) के तहत हस्तांतरण भी केवल तभी स्वीकार्य है जब यह उन कैदियों से संबंधित है जो धारा 29 की उप-धारा (1) में इंगित परिस्थितियों में सीमित थे। वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी विचाराधीन कैदी थे जिन्हें उपर्युक्त धारा २९ के तहत कारागार महानिरीक्षक के आदेशों के अनुसार स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था।"

28. इसके पश्चात्, न्यायालय ने कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 26 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 और 309 का निर्देश किया और अंतरण की अनुज्ञा देते हुए या उससे इंकार करते हुए न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य शक्ति की प्रकृति का उल्लेख किया। इस संदर्भ में उसने निर्णय किया।

> "25.....तथापि, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि स्थानांतरण की अनुज्ञा देते समय या इनकार करते समय न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति न्यायिक है न कि 'मंत्रालयी' जैसा कि श्री नेफेड द्वारा प्रतिवाद किया गया है। ऐसी स्थितियों में मंत्रिस्तरीय शक्ति का प्रयोग अनुपयुक्त है जहां किसी नागरिक के जीवन की गुणवत्ता या उसकी स्वतंत्रता प्रभावित होती है, चाहे वह

कारावास की सजा का सामना कर रहा हो या चल रहे मुकदमे में आपराधिक आरोप का सामना कर रहा हो। सुनील बत्रा ”2. बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में इस न्यायालय द्वारा तय किया गया किकिसी विचाराधीन कैदी का किसी दूर के जेल में स्थानांतरण उसके खुद का बचाव करने के अधिकार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है, लेकिन उसे उसके दोस्तों और संबंधों के समाज से अलग-थलग भी कर सकता है”

29. अंतिम विश्लेषण में, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि किसी कैदी के अंतरण के अनुरोध पर न्यायालय द्वारा दिया गया कोई भी आदेश उस पर प्रतिकूलत: प्रभाव डालने के लिए बाध्य है। अतः न्यायालय के लिए यह बाध्यकारी है कि वह उन परिस्थितियों के बारे में, जिनमें अंतरण के लिए प्रार्थना की जा रही है, अपने मस्तिष्क को निष्पक्ष और वस्तुपरक रूप से लागू करे और उन आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए, जो कैदी को पेश करनी पड़ सकती हैं, विचार करे। निश्चय करने और निर्णय लेने की उस प्रक्रिया में निष्पक्ष रूप से, वस्तुपरक रूप से या दूसरे शब्दों में, न्यायिक रूप से कार्य करना एक अंतर्निहित कर्तव्य है।

30. उपर्युक्त दो घोषणाओं को इस स्थिति को पुष्ट करने के लिए सेवा में लगाया गया है कि किसी दूर स्थान पर कैदियों का स्थानांतरण संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्निहित घटक का उल्लंघन करता है। यह भी प्रस्ताव किया गया है कि यदि अंतरण का निदेश दिया जाता है तो यह 'निष्पक्ष विचारण' की इमारत को प्रभावित करेगा जिसके लिए अभियुक्त उक्त अनुच्छेद की परिधि और दायरे के भीतर रहने का हकदार है। जीवन के अधिकार के बुनियादी सिद्धांत पर आधारित प्रस्तुति के पूर्वोक्त दो अंगों को उचित रूप से समझने और सराहना करने की आवश्यकता है। इस संबंध में प्रस्तुत करने का पहला मुद्दा, जो अभूतपूर्व संवेदनशीलता के साथ तैयार किया गया है, वह यह है कि किसी कैदी, दोषी या विचाराधीन कैदी को दूर की जेल में स्थानांतरित करने का आदेश पूरी तरह से अस्वीकार्य है

और, यदि ऐसा कोई आदेश पारित किया जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से अभियुक्त के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा, जो उन्हें अपने विस्तारित क्षितिज में अनुच्छेद 21 के तहत प्रदान किया गया है। सुनील बत्रा (द्वितीय) (पूर्वोक्त) में, हम पाते हैं कि एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरण वास्तविक विवाद नहीं था। विवाद एक अलग तथ्यात्मक स्कोर से संबंधित था। उक्त निर्णय के पैरा 49 में की गई टिप्पणियां वास्तव में जेल में कैदियों के संरक्षण से संबंधित हैं.संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका पर विचार करने के लिए पत्र प्रणाली का सहारा लेते हुए, न्यायालय ने जेल में कैदियों के साथ दुर्व्यवहार और यातना के बारे में अपनी चिंता व्यक्त की और जेल सुधारों पर प्रकाश डाला। यह ध्यान देने योग्य है कि न्यायालय ने वास्तव में यह कहा है कि कुछ मामलों में अंतरण प्रभावी रूप से दंडात्मक हो सकता है और ऐसे कार्य व्यापक अर्थ में स्वतंत्रता या जीवन पर पीड़ा के बराबर हो सकते हैं। इसके साथ ही, न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि इस तरह की पीड़ा या कमी को तब तक कायम नहीं रखा जा सकता जब तक अनुच्छेद 21 का समाधान नहीं हो जाता है और एक सही कानूनी प्रक्रिया होनी चाहिए, और अपनाई जाने वाली प्रक्रिया निष्पक्ष और तर्कसंगत होनी चाहिए, और विवेकाधिकार का उपयोग अनिर्देशित या अनुचित तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार, निर्णय स्वयं पूर्ण रूप से सिद्धांत का निर्धारण नहीं करता है। इसी प्रकार, सईद सोहेल शेख (पूर्वोक्त) में प्राधिकार किसी कैदी के स्थानांतरण के बारे में विचार कर रहा था और न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति की प्रकृति पर ध्यान केंद्रित किया। सुनील बत्रा (द्वितीय) (पूर्वोक्त) का उल्लेख इस बात को बल देने के लिए किया गया कि एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरण का आदेश एक मंत्रिस्तरीय कार्य नहीं है। इस प्रकार, उक्त प्राधिकार इस प्रस्ताव के लिए एक उदाहरण नहीं है कि किसी अभियुक्त को किसी दूर स्थान पर जेल में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है, जब न्याय, निष्पक्ष और स्वतंत्र सुनवाई की आवश्यकता होती है।

31. अनुच्छेद 21 के इस पहलू को निष्पक्ष विचारण के आधार पर परखा जाना अनिवार्य है। प्रश्न यह उठता है कि यदि अभियुक्त को किसी अन्य राज्य की किसी अन्य जेल में स्थानांतरित किया जाता है तो क्या वह विचारण के लिए क्षमा याचना बन जाएगा या स्वतंत्र और निष्पक्ष विचारण को प्रोन्नत और संरक्षित करेगा। यह तर्क कि सभी प्रासंगिक गवाह सीवान में हैं और बचाव पक्ष जिन गवाहों का हवाला देना चाहता है, वे सीवान में हैं और ऐसी स्थिति में स्थानांतरण के बाद मुकदमे की विशेषता नहीं हो सकती क्योंकि निष्पक्ष सुनवाई केवल एक पहलू को संदर्भित करती है। दंड प्रक्रिया संहिता के तहत मान्यता प्राप्त निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा को संविधान के तहत एक ऊंचा दर्जा दिया गया है, जो काफी विस्तृत और व्यापक अवधारणा है। यदि हस्तांतरण से उक्त अवधारणा में कोई कमी आएगी तो याचिकाकर्ताओं के करने पर इस तरह की प्रार्थना को स्वीकार करने का कोई औचित्य नहीं है। उसके प्रतिकूल आपराधिक न्यायशास्त्र में निष्पक्ष विचारण की अवधारणा एकतरफा यातायात नहीं है, बल्कि इसमें अभियुक्त और पीड़ित शामिल हैं और यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह संतुलन बनाए रखे। जब जीवन, और स्वतंत्रता को खतरा हो और भय पैदा होता है तो यह रीढ़ की हड्डी में कंपन भेजता है और सीवान में मुकदमे की सुनवाई की मूल मज्जा को नष्ट कर देता है। यह निष्पक्ष सुनवाई के विचार से काफी दूर है। पीड़ितों की शिकायत, जो अत्यधिक पीड़ित हैं और स्पष्ट रूप से पीड़ित हैं, को देश के कानून के अनुसार निपटाया जाना चाहिए और इसे एक मृग मरीचिका और दूर का सपना नहीं रहना चाहिए। जैसा कि हम पाते हैं, दोनों पक्षों ने चरम शब्दों में प्रस्ताव दिया है। और संतुलन बनाना हमारा कर्तव्य है।

32. इस आधार पर विवाद की सराहना करने के लिए, हम वर्तमान में कुछ ऐसे प्राधिकरणों के प्रति निर्देश कर सकते हैं जिन्होंने संवैधानिक और वैधानिक पृष्ठभूमि में निष्पक्ष विचारण किया है।

33. जे. जयललिता और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य के मामले में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि निष्पक्ष विचारण आपराधिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है और ऐसी निष्पक्षता को किसी भी तरह से बाधित या धमकाया नहीं जाना चाहिए। जीवन के अधिकार की भावना के साथ हर आरोपी के खिलाफ निष्पक्ष सुनवाई होनी चाहिए और अभियुक्त को आपराधिक मामले में आरोपित आरोप पर स्वतंत्र और निष्पक्ष, न्यायसंगत और युक्तियुक्त विचारण मिलना चाहिए। यह भी कहा गया है कि सार्वजनिक अधिकारों और कर्तव्यों का कोई भी उल्लंघन या उल्लंघन समग्र रूप से समुदाय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है और यह सामान्य रूप से समाज के लिए हानिकारक हो जाता है और इसलिए, सभी परिस्थितियों में, न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे न्याय के प्रशासन में जनता का विश्वास बनाए रखें और ऐसे कर्तव्य को सही ठहराएं और कानून की गरिमा को बनाए रखें और अदालतें आपराधिक कार्यवाहियों के संबंध में होने वाले तंग करने वाले या दमनकारी आचरण के प्रति आंखें नहीं मूंद सकती हैं। अदालत ने आगे कहा कि निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना आरोपी के साथ उतना ही अन्याय है जितना पीड़ित और समाज के साथ। इसके लिए आवश्यक रूप से एक निष्पक्ष न्यायाधीश, एक निष्पक्ष अभियोजक और न्यायिक शांति के वातावरण के समक्ष विचारण की आवश्यकता होती है। चूंकि मुकदमे का उद्देश्य न्याय प्रदान करना और दोषी को दोषी ठहराना और निर्दोष की रक्षा करना है, इसलिए मुकदमा सच्चाई की खोज होनी चाहिए, न कि तकनीकी बातों के बारे में और इसे ऐसे नियमों के तहत चलाया जाना चाहिए जो निर्दोष की रक्षा करें और दोषी को दंडित करें। न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि यह देखा जाना चाहिए कि किया गया है। इसलिए, स्वतंत्र और निष्पक्ष विचारण संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अनिवार्य भाग है। निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार न केवल एक बुनियादी मौलिक अधिकार है, बल्कि एक मानव अधिकार भी है। इसलिए निष्पक्ष सुनवाई में कोई भी बाधा संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकता है। निष्पक्ष विचारण के अधिकार को बढ़ाते हुए न्यायालय ने कहाः

"मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का अनुच्छेद 12 निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार प्रदान करता है जो हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित है। इसलिए, निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक न्यायशास्त्र का दिल है और एक तरह से लोकतांत्रिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है और कानून के शासन द्वारा शासित होता है। निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना मानव का क्रूस पर चढ़ाना है अधिकार हैं। त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर. एस. नायक, राज देव शर्मा (2) बनाम बिहार राज्य, द्वारका प्रसाद अग्रवाल बनाम बी. डी. अग्रवाल, के. अंबझगन बनाम सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस जाहिरा हवीबुल्ला शेख बनाम गुजरात राज्य,नूर आगा बनाम पंजाब राज्य, अमरिन्दर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल 16, मोहम्मद हुसैन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), सुदेवानंद बनाम राज्य, रत्तीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य और नताशा सिंह बनाम सीबीआई के द्वारा।"

34. इस संबंध में, हम टाइम मशीन में बैठ सकते हैं और मेनका संजय गाँधी बनाम् रानी जेठमलानी में तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय को संदर्भित कर सकते हैं। गांधी और एक अन्य बनाम रानी जेठमलानी 21, जिसमें यह है यह पाया गया है कि निष्पक्ष सुनवाई का आश्वासन न्याय प्रदान करने की पहली आवश्यकता है और न्यायालय के लिए यह विचार करने का केंद्रीय मानदंड है कि जब स्थानांतरण का प्रस्ताव किया जाता है तो यह किसी पक्ष की अतिसंवेदनशीलता या सापेक्ष सुविधा या कानूनी सेवाओं की आसान उपलब्धता या छोटी-छोटी शिकायतों की तरह नहीं है। यदि न्यायालय को अपनी स्थानांतरण की शक्ति का प्रयोग करना है तो लोक न्याय और उससे संबंधित वातावरण की दृष्टि से यह कुछ अधिक महत्वपूर्ण, अधिक सम्मोहक, अधिक जोखिम भरा होना आवश्यक है। यह एक आधारभूत सिद्धांत है, हालांकि परिस्थितियां अनगिनत हो सकती हैं और प्रत्येक मामले में भिन्न हो सकती हैं। अदालत ने कहा कि आरोपी यह तय नहीं कर सकता कि उसके खिलाफ मामला

कहां चलाया जाए और किसी मामले में यह अदालत का कर्तव्य है कि वह परिस्थितियों का आकलन करे।

35. रत्तीराम (पूर्वोक्त) में, निष्पक्ष विचारण पर बोलते हुए, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया किः

"39....मूलतः, एक निष्पक्ष और समदर्शी विचारण का एक अति-पवित्र उद्देश्य होता है। इसका एक स्पष्ट उद्देश्य है कि आरोपी पर पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए। एक निष्पक्ष सुनवाई इस तरह से की जानी चाहिए जिससे अन्याय, पूर्वाग्रह, बेईमानी और पक्षपात का पूरी तरह से बहिष्कार हो।

उक्त मामले में, यह आगे अभिनिर्धारित किया गया है किः

"60 त्वरित विचारण के पहलुओं का वर्णन करते समय इसे अभियुक्त का अनन्य अधिकार नहीं माना जा सकता। किसी पीड़ित के अधिकार को मंगल सिंह बनाम किशन सिंह वाले मामले में मान्यता दी गई है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया हैः

"14..... आपराधिक मुकदमे के निष्कर्ष में किसी भी तरह के अत्यधिक विलंब का निस्संदेह समाज पर, विशेष रूप से मामले के दोनों पक्षों पर, अत्यधिक हानिकारक प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह मानना एक गंभीर गलती होगी कि मुकदमे में देरी से अपराध के पीड़ित को गंभीर पीड़ा और वेदना नहीं होती है। कई मामलों में पीड़ित व्यक्ति आरोपी की तुलना में अधिक पीड़ित हो सकता है। इसलिए, अभियुक्त को मुकदमे में देरी के कारण सभी लाभ देने और अपराध के पीड़ित को सभी न्याय से पूरी तरह वंचित करने का कोई कारण नहीं है। "

61. यह उल्लेखनीय है कि संविधान न्यायपीठ इकबाल सिंह मारवाह बनाम मीनाक्षी मारवाह एक अलग संदर्भ में यह भी कहा गया था कि किसी दोषी व्यक्ति के

अभियोजन में देरी उसके लाभ के लिए होती है क्योंकि गवाह साक्ष्य देने के लिए अनिच्छुक हो जाते हैं और साक्ष्य खो जाते हैं।

x x x x

64. यह नोट किया जाए कि कोई भी व्यक्ति पीड़ित व्यक्ति के साथ एक विदेशी या आपराधिक विचारण के लिए पूरी तरह अजनबी के रूप में व्यवहार नहीं कर सकता है। आपराधिक न्यायशास्त्र ने, समय के साथ, पीड़ित पर जोर दिया है जो मूल रूप से अपराधी के साथ-साथ पीड़ित के दृष्टिकोण से विचारण की धारणा है। दोनों को सामाजिक संदर्भ में देखा जाता है। कुछ देशों में पीड़ित की राय को उचित सम्मान और सम्मान दिया जाता है। हमारे मौजूदा आपराधिक न्यायशास्त्र में कुछ अपराधों के सम्बन्ध में पीड़ित की गवाही को सर्वोच्च महत्व दिया गया है। कभी-कभी यह माना जाता है कि यह अदालत का कर्तव्य है कि वह पीड़ित के अधिकार की रक्षा करे। पुनः विचारण का निदेश घड़ी को पीछे करना है और यदि विचारण वास्तव में अनुचित नहीं रहा है और न्याय की हत्या या न्याय की विफलता नहीं हुई है तो यह न्याय का उपहास होगा।"

36. यह ध्यान देने योग्य बात है कि उक्त मामले में न्यायालय ने यह उल्लेख किया था कि एक निष्पक्ष विचारण होना चाहिए और न्याय की हत्या नहीं होनी चाहिए और किसी भी परिस्थिति में, अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए, लेकिन, एक अर्थपूर्ण जैसा, प्रत्येक प्रक्रियात्मक चूक या प्रत्येक अवरोध जिसे उचित चरण में स्वीकार किया गया है और जिस पर आपत्ति नहीं की गई है, वह परीक्षण को नुकसान नहीं पहुंचाएगा या इसे अनुचित नहीं बनाएगा। इसे अनुचित मानना प्रक्रिया में पूर्णता की अवांछनीय स्थिति होगी। adjective law को लागू करने में एक absolute apple-pie order, केवल sound and

fury होगा जिसका कोई मतलब नहीं है। मनु शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) वाले मामले में न्यायालय ने

> "197..... निष्पक्ष विचारण की अवधारणा पर बल देते हुए, इस प्रकार मत व्यक्त किया भारतीय आपराधिक न्यायशास्त्र में, अभियुक्त को दुनिया के कुछ देशों के विभिन्न न्यायशास्त्र की तुलना में कुछ हद तक लाभप्रद स्थिति में रखा गया है। भारत में आपराधिक न्याय प्रशासन प्रणाली मानव अधिकारों और मानव जीवन की गरिमा को बहुत ऊंचे स्थान पर रखती है। हमारे न्यायशास्त्र में एक अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि वह दोषी साबित नहीं हो जाता है, कथित अभियुक्त निष्पक्षता और सच्ची जांच और निष्पक्ष सुनवाई के हकदार हैं और अभियोजन से किसी अपराध के विचारण में संतुलित भूमिका निभाने की उम्मीद की जाती है। कानून के बुनियादी नियम का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए जांच न्यायसंगत, निष्पक्ष, पारदर्शी और त्वरित होनी चाहिए। ये हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र के बुनियादी सिद्धांत हैं और वे भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 में निहित संवैधानिक जनादेश के अनुरूप हैं।"

38 तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मोहम्मद हुसैन @जुल्फिकार अली बनाम राज्य (एनसीटी की सरकार) दिल्ली के मामले में तारीफ करते हुए जाहिरा हबीबुल्ला एच शेख बनाम् गुजरात राज्य (सर्वश्रेष्ठ बेकरी मामले के रूप में विख्यात) में पहले के फैसले के पैरा 33 को पुनः प्रस्तुत किया जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए हैः

> "33. निष्पक्ष सुनवाई का सिद्धांत अब कानून के कई क्षेत्रों को सूचित और ऊर्जा प्रदान करता है। यह कई नियमों और प्रयोगों में परिलक्षित होता है। यह एक सतत, सतत विकास प्रक्रिया है जो नई और बदलती हुई परिस्थितियों और स्थिति की अनिवार्यताओं के अनुरूप है, जो समय-समय पर और अपराध की प्रकृति से संबंधित

है, इसमें शामिल व्यक्ति-सीधे या इसके पीछे काम कर रहे व्यक्ति, सामाजिक प्रभाव और सामाजिक आवश्यकताएं और यहां तक कि कई शक्तिशाली संतुलन कारक भी हैं जो आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रशासन के रास्ते में आ सकते हैं।

39. ज़हिरा हबीबुल्ला एच. शेख (उपर्युक्त)- यह अभिनिर्धारित किया गया है-

“38. आपराधिक मुकदमा मामले में मुद्दों की न्यायिक जांच है और इसका उद्देश्य किसी तथ्य या प्रासंगिक तथ्यों के बारे में एक निर्णय पर पहुंचना है। जो तथ्य मुद्दे का पता लगाने और ऐसे तथ्यों का सबूत प्राप्त करने का कारण बन सकता है जिसमें अभियोजन पक्ष और अभियुक्त अपने अभिवचनों द्वारा पहुंच गए हैं-नियंत्रक प्रश्न अभियुक्त का दोष या निर्दोषिता है। चूंकि इसका उद्देश्य न्याय प्रदान करना और दोषी को दोषी ठहराना और निर्दोष की रक्षा करना है, इसलिए विचारण को सत्य की खोज होनी चाहिए, न कि तकनीकों के बारे में, और इसे ऐसे नियमों के तहत संचालित किया जाना चाहिए जो निर्दोष की रक्षा करे और दोषी को दंडित करे। आरोप का सबूत, जो संदेह से परे होना चाहिए, मौखिक और पारिस्थितिक साक्ष्य की समग्रता के न्यायिक मूल्यांकन पर निर्भर होना चाहिए, न कि एक अलग संवीक्षा द्वारा।

39. अभियुक्त या अभियोजन पक्ष को निष्पक्ष सुनवाई देने में असफलता विधि की सम्यक प्रक्रिया के न्यूनतम मानकों का भी उल्लंघन करती है। विधि की सम्यक प्रक्रिया की अवधारणा में यह अंतर्निहित है कि निंदा केवल उस विचारण के बाद ही की जानी चाहिए जिसमें सुनवाई वास्तविक हो, न कि दिखावा या मात्र स्वांग और दिखावा। चूंकि निष्पक्ष सुनवाई के लिए प्रक्रिया को संरक्षित करने के लिए एक अवसर की आवश्यकता होती है, इसलिए जल्दबाजी में, नाट्य-प्रबंधित, अनुकूल और पक्षपातपूर्ण परीक्षण द्वारा इसे नष्ट और उल्लंघन किया जा सकता है।

40. आपराधिक अपराध के लिए निष्पक्ष विचारण में न केवल विधि के ढांचे और रूपों का तकनीकी पालन शामिल है, बल्कि सच्चाई का पता लगाने और न्याय की हत्या को रोकने के लिए इसके सिद्धांतों को मान्यता देना और उन्हें लागू करना भी शामिल है।"

40. मो.हुसैन @जुल्फिकार अली (ऊपर) तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने त्वरित विचारण और निष्पक्ष विचारण के बीच अंतर करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि शीघ्र विचारण के अधिकार और अभियुक्त के निष्पक्ष विचारण के अधिकार के बीच गुणात्मक अंतर है। अभियुक्त के अधिकार के विपरीत निष्पक्ष विचारण, शीघ्र विचारण के अधिकार का वंचन स्वयं अभियुक्त को अपना बचाव करने में प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। त्वरित विचारण का अधिकार अपनी प्रकृति में सापेक्ष है। यह विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आपराधिक मुकदमे के समापन में देरी के प्रत्येक मामले को ऐसे मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में देखा जाना चाहिए। केवल अभियोजन के आरंभ होने के बाद से कई वर्षों का व्यपगत होना ही अभियोजन के बंद होने या अभ्यारोपण की बर्खास्तगी को न्यायोचित नहीं ठहरा सकता। त्वरित विचारण के अभियुक्त के अधिकार से संबंधित कारकों को समाज पर अपराध के प्रभाव और न्यायिक प्रणाली में लोगों के विश्वास के साथ तौला जाना चाहिए। शीघ्र विचारण अभियुक्त को अधिकार सुनिश्चित करता है किंतु यह लोक न्याय के अधिकारों को वर्जित नहीं करता है। अपराध की प्रकृति और गंभीरता, अंतर्वलित व्यक्तियों, सामाजिक प्रभाव और सामाजिक आवश्यकताओं को अभियुक्त के त्वरित विचारण के अधिकार के साथ तौला जाना चाहिए और यदि संतुलन पूर्व के पक्ष में झुकाव देती है तो आपराधिक विचारण का समापन अभियोजन के जारी रहने के विरुद्ध नहीं होना चाहिए और यदि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त का अधिकार और स्थिति की अनिवार्यता संतुलन को उसके पक्ष में झुकाव देती है तो अभियोजन का अंत किया जा सकता है।

41. हमने उक्त प्राधिकारी को निर्दिष्ट किया है क्योंकि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने स्पष्ट रूप से कहा है कि निष्पक्ष विचारण के परीक्षण को लागू करते समय कुल मिलाकर समाज के हितों की उपेक्षा या पूरी तरह से बहिष्कार नहीं किया जा सकता है।

42 बबलू कुमार और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, के मामले में न्यायालय ने यह कहा है कि यह देखना न्यायालय का कर्तव्य है कि न तो अभियोजन पक्ष और न ही अभियुक्त आपराधिक मुकदमे के साथ सत्यनिष्ठा का प्रदर्शन करें या कार्यवाही की पवित्रता को नष्ट करें। वे अपने आप को इस तरह से संचालित करके समुदाय के हितों को जब्त या हाईजैक नहीं कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मुकदमा एक नकली मुकदमा बन जाए। न्यायालय ने आगे यह निर्णय दिया कि आपराधिक विचारण समाज की गंभीर चिंता है और सामूहिक रूप से प्रत्येक सदस्य का ऐसे विचारण में अंतर्निहित हित है और इसलिए न्यायालय यह देखने के लिए बाध्य है कि न तो अभियोजन पक्ष और न ही बचाव पक्ष अनावश्यक स्थगन ले और अपने नियंत्रण में विचारण ले। उक्त टिप्पणियां निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा, अभियोजन पक्ष के दायित्व, समुदाय के हित और न्यायालय के कर्तव्य को ध्यान में रखते हुए की गई थीं।

43. हाल ही में, हरियाणा राज्य बनाम राम मेहर और अन्य मामले में पहले के निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, न्यायालय ने फैसला सुनाया कि निष्पक्ष विचारण की अवधारणा न तो अमूर्तता के दायरे में है और न ही एक अस्पष्ट विचार है। यह एक ठोस घटना है, यह कठोर नहीं है और इसे लागू करने के लिए कोई सरल निचोल सूत्र नहीं हो सकता है। न्यायालय ने कहा कि इसे इसके अनुप्रयोग में किसी प्रकार की कठोरता या लचीलेपन के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। इसका कारण यह है कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए अभियुक्त, पीड़ित और सामूहिक रूप से निष्पक्षता की आवश्यकता होती है। न्यायालय ने फैसला सुनाया कि न तो अभियुक्त और न ही अभियोजन पक्ष और न ही

पीड़ित, जो समाज का एक हिस्सा है, दूसरे पर पूर्ण प्रभुत्व का दावा कर सकते हैं, क्योंकि एक बार पूर्ण प्रभुत्व को मान्यता मिल जाने पर, स्थापित कानूनी मानदंडों का उल्लंघन करते हुए विचारण के संचालन में अराजक अव्यवस्था लाने की संभावना होगी। न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि पूरी बात वस्तु-स्थिति, स्थापित मानदंडों और मान्यताप्राप्त सिद्धांतों और संपूर्ण रूप से तथ्यात्मक परिदृश्य के अंतिम मूल्यांकन पर निर्भर करेगी। ऐसे मामले हो सकते हैं जो विभाजन का आदेश दे सकते हैं लेकिन इसे एक कठोर नियम नहीं कहा जा सकता है। प्रत्येक अनियमितता निष्पक्ष सुनवाई के क्षेत्र में आयात नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जहां पीड़ित के साथ अन्याय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह देखना है कि जब मुकदमा चलाया जाता है तो अन्याय से बचा जाए। इसके साथ-साथ निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा को इस हद तक अनुमति नहीं दी जा सकती है कि सीआरपीसी या अन्य अधिनियमितियों के अनुसार मुकदमा चलाने का प्रणालीगत आदेश बचाव पक्ष या अभियोजन पक्ष की इच्छाओं और इच्छाओं के लिए बंधक हो जाए। संहिता के आदेश को हवा में नहीं फेंका जा सकता। ऐसी स्थिति में, जैसा कि कई प्राधिकरणों में निर्धारित किया गया है, न्यायालयों की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रणाली में एक जैविक विकार पैदा करने के लिए निष्पक्ष सुनवाई की दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। परीक्षण की अवधारणा की शुरुआत करने के लिए एक उपजाऊ दिमाग को खाद देने के लिए इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने आगे कहा कि ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि निष्पक्ष सुनवाई को अपने स्वयं के आधार पर नहीं रखा जाना चाहिए क्योंकि इसे रहना चाहिए, लेकिन जहां तक इसकी प्रयोज्यता का संबंध है, इसे लागू करने वाले पक्ष को स्थापित सिद्धांतों के समर्थन के साथ स्थापित करना होगा। प्रतिष्ठा के पतन पर निष्पक्ष सुनवाई के नाम पर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इससे न्याय की हत्या होगी।

44. अनुच्छेद 21 के एक पहलू के रूप में निष्पक्ष विचारण की अवधारणा के अध्ययन विश्लेषण पर, यह ध्यान देने योग्य है कि इसकी परिधि में और इसमें अभियुक्त, अभियोजन और पीड़ित के हित शामिल हैं। पीड़ित, एक व्यक्ति हो सकता है, जिसने पीड़ा झेली हो, लेकिन एकवचन द्वारा पीड़ा झेलने से सामुदायिक हित प्रभावित होने की संभावना है। इसलिए, कुछ परिस्थितियों में और कुछ मामलों में सामूहिक रूप से पीड़ित की स्थिति मान ली जाती है। वे सीआरपीसी की धारा 357 ए के तहत परिकल्पित मुआवजे के हकदार नहीं हो सकते हैं, लेकिन इस तरह की घटनाओं को रोकने के लिए अपराध की चिंता और इच्छा और अपराधी, यदि दोषी है, तो उसे दंडित किया जाना चाहिए। - यह कानून के नियम का एक पहलू है। और उसे स्वीकार किया जाना हे तथा अंततः संरक्षित करना है।

45. विधि में यह सुनिश्चित है कि अनुच्छेद 21 के अधीन अधिकार निरपेक्ष नहीं है। कानून के अनुसार इसे कम किया जा सकता है। अधिकार में कटौती उचित प्रक्रिया का पालन करके अनुमेय है जो तर्कसंगतता के परीक्षण का सामना कर सकती है। यह प्रस्तुत करना कि यदि अभियुक्त को सीवान की जेल से बिहार राज्य के बाहर किसी अन्य जेल में स्थानांतरित कर दिया जाता है, तो उसके निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का गला घोंट दिया जाएगा और निष्पक्ष सुनवाई और उसके प्रस्तुति का खंडन होगा। उन्होंने कहा कि अभियुक्त का न तो प्रक्रिया पर एकाधिकार है और न ही उसके पास कोई विशेष पूर्ण अधिकार है, संतुलित समाधान की आवश्यकता है। दोनों विपरीत तर्क निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांत पर आधारित हैं और कथित पैमाने पर इस विवाद का फैसला किया जाएगा.पीड़ित का हित प्रासंगिक है और इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह तर्क कि यदि अभियुक्त को सीवान जेल से बाहर नहीं ले जाया जाता है, तो लंबित मुकदमों का परिणाम पूर्ण प्रहसन होगा, क्योंकि कोई भी गवाह उसके खिलाफ गवाही देने की स्थिति में नहीं होगा और वे, पूरी तरह से बेपरवाही के साथ, उसके अनदेखे फंदों द्वारा पैदा किए गए डर की भावना के आगे झुकने के लिए बाध्य होंगे, एक चालाकी नहीं है और इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। ऐसी

स्थिति में, इस न्यायालय को अभियुक्त और पीड़ितों के बीच अधिकारों को संतुलित करना चाहिए और उसके बाद निष्पक्ष सुनवाई के पैमाने पर भार डालना चाहिए कि क्या स्थानांतरण आवश्यक है या नहीं। यह उपहास होगा अगर हम इस दावे को नजरअंदाज कर दें कि यदि प्रत्यर्थी नं. ३ को सीवान जेल से स्थानांतरित नहीं किया जाता है और मुकदमा सीवान में आयोजित किया जाता है, तो न्याय, जो कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक है, को एक अभूतपूर्व नुकसान होगा और याचिकाकर्ता डर की एक स्थिर स्थिति में बने रहेंगे जो उनकी हड्डियों को पिघला देगी। इसका अर्थ अधिकारों का संतुलन होगा।

46 इस प्रकार, जैसा कि वर्तमान में सलाह दी गई है, हम पहले कुछ प्राधिकारियों को बताएंगे जो अधिकारों के संतुलन से सम्बध्द है। सकाल पेपर (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और एक अन्य न्यायालय ने वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया है कि भाषण की स्वतंत्रता केवल राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या किसी अपराध के उद्दीपन के संबंध में सीमित की जा सकती है। आम जनता के हित में व्यापार करने की स्वतंत्रता की तरह इसमें कटौती नहीं की जा सकती। आगे विश्लेषण करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः-

> “इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राज्य ऐसा कानून नहीं बना सकता जो एक स्वतंत्रता को सीधे तौर पर प्रतिबंधित करता हो और दूसरी स्वतंत्रता का बेहतर उपयोग सुनिश्चित करता हो। इसलिए यह मानने का सबसे बड़ा कारण है कि राज्य एक स्वतंत्रता को दूसरी स्वतंत्रता पर अन्यथा अनुमेय प्रतिबंध लगाकर सीधे तौर पर प्रतिबंधित नहीं कर सकता है।”

47. सुब्रमण्यम स्वामी बनाम भारत संघ वाले मामले में न्यायालय ने उक्त प्राधिकारी को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह निर्णय दिया किः

"इसमें मुद्दा अनुच्छेद 19 (1) (ए) और दूसरा अनुच्छेद 21 के तहत अलग-अलग अधिकारों को बनाए रखने और संतुलित करने का है अतः, किसी एक व्यक्ति के मूल अधिकारों को दूसरे व्यक्ति के साथ समतुल्य और प्रतिभारित करने की अवधारणा। यह केवल दूसरी स्वतंत्रता के बेहतर आनंद का मामला नहीं है आचार्य महाराजश्री नरेन्द्र प्रसादजी आनंदप्रसादजी महाराज बनाम गुजरात राज्य, 1984 में यह देखा गया है कि एक विशेष मौलिक अधिकार किसी अटूट बंधन में अलग-थलग नहीं रह सकता। किसी व्यक्ति के एक मूल अधिकार को दूसरों द्वारा दूसरे मूल अधिकार के प्रयोग के साथ सामंजस्य बनाकर तथा समग्र रूप से सामाजिक कल्याण के हित में निदेशक सिद्धांतों के आलोक में राज्य द्वारा शक्ति के युक्तियुक्त और विधिमान्य प्रयोग के साथ सह-अस्तित्व में रहना होगा। न्यायालय का कर्तव्य विभिन्न हितों के प्रतिस्पर्धी दावों के बीच संतुलन स्थापित करना है। डीटीसी बनाम मजदूर कांग्रेस के मामले में न्यायालय ने निर्णय दिया है कि कि मौलिक अधिकारों से संबंधित अनुच्छेद संविधान में एक एकीकृत योजना के सभी हिस्से हैं और उनके पानी को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर अबाधित और निष्पक्ष न्याय के भव्य प्रवाह का गठन करने के लिए मिलाया जाना चाहिए, जो व्यक्तियों या समूहों या वर्गों के बीच अनुचित या अनुचित भेदभाव का अभाव दर्शाता है।"

48. इस संदर्भ में, कतिपय अन्य विनिश्चयों के प्रति निर्देश करना भी समुचित है जहां न्यायालय ने प्रतिस्पर्धा अधिकारों की अवधारणा पर विचार किया है। हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि इसमें निहित उक्ति की सकारात्मक सराहना होनी चाहिए श्री 'एक्स' बनाम अस्पताल 'जेड' में, निजता के अधिकार के सम्बन्ध में मुद्दा उठा जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत नागरिकों को जीवन और स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है और स्वस्थ जीवन जीने के लिए दूसरे का अधिकार है। उक्त विवाद पर विचार करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मानव होने से सुश्री 'वाई' को भी, जैसा कि वह स्पष्ट रूप से किसी

अन्य मानव को उपलब्ध है। सभी मानवाधिकारों का उपभोग करना चाहिए। यह उन्हें अनुच्छेद 21 के तहत उपलब्ध मौलिक अधिकार के अलावा है, जो इस देश के प्रत्येक नागरिक को जीवन के अधिकार की गारंटी देता है। न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जहां दो मूल अधिकारों अर्थात् जीवन के अधिकार के भाग के रूप में अपीलकर्ता की निजता का अधिकार और एक स्वस्थ जीवन जीने का सुश्री वाई का अधिकार जो अनुच्छेद 21 के अधीन उनका मूल अधिकार है, का टकराव होता है, वहां वह अधिकार जो सार्वजनिक नैतिकता या सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाएगा, अकेले न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से लागू किया जाएगा, इस कारण से कि नैतिक विचारों को दूर नहीं रखा जा सकता है और न्यायाधीशों से न्यायालय कक्ष के रूप में ज्ञात हॉल में मिट्टी की मूक संरचनाओं के रूप में बैठने की अपेक्षा नहीं की जाती है, बल्कि संवेदनशील होना चाहिए।

49. उपर्युक्त निर्णय इस प्रस्ताव का प्राधिकार है कि दो व्यक्तियों के बीच संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अपने अधिकार की मांग करने से टकराव हो सकता है और ऐसी स्थिति में, संतुलन को तोलने के लिए जिस परीक्षण को लागू करने की आवश्यकता है, वह व्यापक सार्वजनिक हित की परीक्षा है और कुछ परिस्थितियों में यह उस समय की सार्वजनिक नैतिकता को आगे बढ़ाएगा। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो " वृहत्तर सामुदायिक हित या सामूहिक या सामाजिक व्यवस्था का हित " किसी के अधिकार को मान्यता देने और स्वीकार करने का सिद्धांत होगा जिसे संरक्षित किया जाना है।

50. इस संदर्भ में, रेव. स्टेनिसलस बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य में की गई घोषणा रचनात्मक होगा उक्त मामले में, संविधान पीठ दो प्रकार की अपीलों पर विचार कर रही थी, एक मध्य प्रदेश से उत्पन्न हुई, जो मध्य प्रदेश धर्म स्वतंत्र अधिनियम, 1968 से संबंधित थी और दूसरा उड़ीसा धर्म की स्वतंत्रता अधिनियम, 1967 से संबंधित था। जहां तक उनका संबंध जबरन संपरिवर्तन के प्रतिषेध और उसके लिए दंड से था, दोनों अधिनियम

समान थे। बड़ी पीठ ने मध्य प्रदेश मामले के तथ्यों का उल्लेख किया जो अंततः उच्च न्यायालय तक पहुंचा। उच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि कोई इस तर्क का औचित्य नहीं था कि धारा 3,4 और 5 संविधान के अनुच्छेद 25 (1) का उल्लंघन करती हैं। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि ये धाराएं बल प्रयोग, धोखाधड़ी और प्रलोभन द्वारा धर्म परिवर्तन जैसी आपत्तिजनक गतिविधियों द्वारा धर्म परिवर्तन पर रोक लगाकर सभी नागरिकों के लिए धार्मिक स्वतंत्रता की समानता स्थापित करती हैं। उड़ीसा अधिनियम को उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित किया गया था। विवाद को समझने के लिए, न्यायालय ने निम्नलिखित प्रश्न पूछाः

> “(1) क्या ये दोनों अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 25 (1) के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हैं, और
>
> (2) क्या राज्य विधानमंडल उन्हें अधिनियमित करने के लिए सक्षम थे?”

51. इस न्यायालय के समक्ष यह प्रतिवाद किया गया था कि अपने धर्म का प्रचार करने के अधिकार से किसी व्यक्ति को अपने धर्म में संपरिवर्तित करने का अधिकार अभिप्रेत है और ऐसा अधिकार संविधान के अनुच्छेद 25 (1) द्वारा प्रत्याभूत है। उक्त विवाद पर विचार करते हुए वृहत्तर न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित कियाः

> “हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस अर्थ में अनुच्छेद 25 (1) में 'प्रचार' शब्द का उपयोग किया गया है, क्योंकि अनुच्छेद किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करने का अधिकार नहीं देता है, बल्कि अपने सिद्धांतों की व्याख्या द्वारा किसी व्यक्ति के धर्म को संचारित या प्रसारित करना है। इसे याद रखना होगा अनुच्छेद 25 (1) प्रत्येक नागरिक को 'अंतरात्मा की स्वतंत्रता' की गारंटी देता है, न कि केवल एक विशेष धर्म के अनुयायियों को, और यह बदले में यह अभिनिर्धारित करता है कि किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करने का कोई मौलिक

अधिकार नहीं है क्योंकि यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करता है, जैसा कि उसके धर्म के सिद्धांतों को संचारित करने या फैलाने के उसके प्रयास से अलग है, तो यह देश के सभी नागरिकों को समान रूप से गारंटीकृत 'अंतरात्मा की स्वतंत्रता' का उल्लंघन होगा।"

और फिर से:

"इस बात की सराहना की जानी चाहिए कि अनुच्छेद में प्रतिष्ठापित धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी केवल एक धर्म के संबंध में नहीं है, बल्कि सभी धर्मों को समान रूप से शामिल करती है, और यदि कोई व्यक्ति अन्य धर्मों का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों की स्वतंत्रता के अनुरूप अपने अधिकार का प्रयोग करता है तो वह इसका उचित रूप से लाभ उठा सकता है। एक के लिए स्वतंत्रता है, दूसरे के लिए स्वतंत्रता है, समान रूप से, और इसलिए किसी भी व्यक्ति को अपने धर्म में परिवर्तित करने का मौलिक अधिकार जैसी कोई बात नहीं हो सकती है।"

52. पूर्वोक्त निर्णय स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है, हालांकि एक अलग संदर्भ में, कि एक के लिए जो स्वतंत्रता है वह दूसरे के लिए भी समान रूप से स्वतंत्रता है। यह धारणा तब स्पष्ट हो जाती है जब न्यायालय ने कहा है कि यह याद रखना होगा कि अनुच्छेद 25 (1) अन्य नागरिकों को अंतःकरण की स्वतंत्रता की गारंटी देता है, न कि केवल विशेष धर्म के अनुयायियों को और किसी अन्य व्यक्ति को परिवर्तित करने का मौलिक अधिकार नहीं है। यह अधिकार सभी नागरिकों को दिया गया है। अपने सिद्धांतों की व्याख्या द्वारा अपने धर्म के प्रचार या प्रसार के अधिकार का अर्थ किसी अन्य व्यक्ति का धर्म परिवर्तन करना नहीं है क्योंकि यह दूसरे के मूल अधिकार को प्रभावित करता है। हमने इस प्राधिकरण का उल्लेख किया है क्योंकि इसने एक तरह से मौलिक अधिकार के अंतर्विरोध पर जोर दिया है।

53. यह कहा जा सकता है कि ऐसी परिस्थितियां उभर सकती हैं जो अंतः मूल अधिकारों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक हो सकती हैं। यह स्पष्ट रूप से समझा गया है कि दो मूल अधिकारों या अंतर-मूल अधिकारों के बीच संतुलन बनाते समय जो परीक्षण लागू किया जाना है, लागू किए जाने वाले सिद्धांत समान मूल अधिकार के बीच अंतर-विरोध में लागू किए जाने वाले सिद्धांत से भिन्न हो सकते हैं। इसका ब्यौरा देने के लिए, जैसा कि इस मामले में है, आरोपी को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निष्पक्ष सुनवाई का मौलिक अधिकार है। इसी प्रकार, पीड़ित जो सीधे प्रभावित होते हैं और सामूहिक रूप से एक घटक का हिस्सा भी बनते हैं, उन्हें निष्पक्ष सुनवाई का मौलिक अधिकार है। इस प्रकार, दो व्यक्ति हो सकते हैं जिनके पास अधिकार का दावा करने या दावा करने की वैधता हो। वैधता का तथ्य एक प्राथमिक विचार है। यह याद रखना होगा कि कोई भी मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं होता और इसकी कुछ परिस्थितियों में कुछ सीमाएं भी हो सकती हैं। इस प्रकार, राज्य द्वारा अनुमेय सीमाएं लागू की जाती हैं। उक्त सीमाएं कानून की सीमाओं के भीतर होनी चाहिए। "हालांकि, जब एक ही अनुच्छेद के तहत प्रदत्त अधिकार का अंतर-विरोध होता है, जैसे कि इस मामले में निष्पक्ष सुनवाई, तो जिस परीक्षण को लागू करने की आवश्यकता है, हम सोचने के लिए तैयार हैं, यह" "सर्वोच्च सामूहिक हित" "या" "न्याय वितरण प्रणाली में जनता का विश्वास बनाए रखना" "होगा। "एक उदाहरण दिया जा सकता है। वर्ग सम्मान के नाम पर व्यक्तियों का एक समूह, जैसा कि कहा गया है विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में कहा गया है एक महिला के चाहत को कम या खत्म नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि जीवन में अपना साथी चुनने के लिए महिलाओं की चाहत एक वैध संवैधानिक अधिकार है। यह व्यक्तिगत पसंद पर आधारित है जिसे संविधान में अनुच्छेद 19 के तहत मान्यता प्राप्त है और इस तरह के अधिकार से वर्ग सम्मान या सामूहिक सोच की अवधारणा के आगे नहीं झुकने की उम्मीद है। इसका कारण यह है कि वर्ग सम्मान की भावना की कोई वैधता नहीं है, भले ही किसी प्रकार की धारणा के तहत

सामूहिक रूप से इसका अभ्यास किया जाता है। इसलिए, यदि सामूहिक हित या जनहित, जो सार्वजनिक हित की सेवा करता है और आगे किसी मौलिक अधिकार का दावा या दावा करने की वैधता रखता है, तो ही वह यह कह सकता है कि उनके अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए पीड़ितों के अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अविभाज्य पहलू है और जब वे इस बात पर जोर देते हैं कि स्वयं अधिकार के साथ-साथ सामूहिक हित का हिस्सा भी है, तो जनहित की अवधारणा को बल मिलता है। ऐसी परिस्थितियों में बढ़े हुए जनहित को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि यह कानून के शासन को आगे बढ़ाता है और बढ़ावा देता है। यह तुरंत स्पष्ट किया जा सकता है कि प्रमुखता का परीक्षण जो वैधता और जनहित पर आधारित है, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर तय किया जाना है और इसे सार रूप में नहीं कहा जा सकता है। इसके लिए तथ्यों, प्रतिस्पर्धी हितों और संतुलन की अंतिम धारणा का अध्ययन करने की आवश्यकता होगी जो व्यापक सार्वजनिक हित की सेवा करेगी और कानून के शासन की गरिमा की सेवा करेगी। इस संबंध में हमें एक प्राचीन कहावत याद आती हैः

> “यधपि यह सिध्द है, पर जनहित में नहीं है न तो यह नियम पर आधाारित है और न यह आचरण के योग्य है।”

उपर्युक्त कहावत जनहित और उसके महत्व तथा कतिपय व्यक्तिगत हितों पर प्रधानता पर बल देती है। इस प्रकार इसका सामान्य उपयोग नहीं हो सकता है, लेकिन इसका उद्देश्य इसका उल्लेख करते हुए यह है कि कुछ अवसरों पर इसे उचित माना जा सकता है।

54. यह धारणा बन सकती है कि यदि प्रधानता के सिद्धांत का पालन करना है तो व्यक्ति का अधिकार पूरी तरह समाप्त हो जाता है। यह ध्यान रखना होगा कि संपूर्ण विलोपन संतुलन नहीं बना रहा है। जब संतुलित कार्य किया जाता है, तो निष्पक्ष विचारण

का अधिकार पूरी तरह से अपंग नहीं होता है, लेकिन यह कुछ हद तक कम हो जाता है जिससे अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण का अधिकार मिलता है और साथ-साथ, पीड़ितों को लगता है कि निष्पक्ष विचारण आयोजित किया जाता है और न्यायालय आश्वस्त होता है कि ऐसे मामलों के संबंध में निष्पक्ष विचारण होता है। इसके अलावा, सामूहिक विश्वास को आपराधिक न्याय वितरण प्रणाली में रखा जाता है और यह स्थिर बना रहता है।

55. ऐसी स्थिति में जनहित की अवधारणा की सराहना करते हुए, न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष विचारण की प्रक्रिया का अर्थ निकालने में स्वयं को संलग्न करे जो अंततः न्याय के प्रयोजन को पूरा करती है और संवैधानिक संवेदनशीलता के करीब बनी रहती है। निष्पक्ष सुनवाई के नाम पर कोई भी आरोपी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 के तहत मुकदमे के संचालन के मूल उद्देश्य को विफल करते हुए स्थगन की मांग नहीं कर सकता है वह दंड प्रक्रिया संहिता के विभिन्न प्रावधानों के तहत आवेदन दाखिल करना जारी नहीं रख सकता चाहे वे मान्य हों या नहीं, और निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांत के आधार पर प्रत्येक अवसर पर एक दलील पेश करते हैं। ऐसी स्थिति में, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, सामूहिक कारण का प्रतिनिधित्व करने वाले अभियोजन और पीड़ित, जो अपनी व्यक्तिगत शिकायत के समाधान के लिए लड़ता है, को बोलने की अनुमति दी जाती है और अदालत से मूक दर्शक बने रहने की उम्मीद नहीं की जाती है। इस प्रकार, जब एक ही मूल अधिकार में अंतर्विरोध उत्पन्न होता है, विशेष रूप से निष्पक्ष विचारण के संदर्भ में, तो इसे तथ्यों की स्थिति प्राप्त करने के संबंध में ध्यान में रखते हुए हल किया जाना चाहिए। ऐसे अभियुक्त को, जो अपनी उपस्थिति से न्यायालय में किसी साक्षी की सुरक्षा के विचार को समाप्त करने में समर्थ हुआ है या उस मामले में अंतिम न्याय में पीड़ित के विश्वास को हानि पहुंचाता है और इस प्रकार का क्षरण विचारण के वातावरण में व्याप्त भय के कारण होता है, इस प्रकार की स्थिति का सामना नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक अतार्किक स्थिति है। इस तरह के खतरे को चुपचाप सहन नहीं

किया जाना चाहिए, क्योंकि न्याय की गरिमा इस तरह की शिकायतों को जीवित रहने की अनुमति नहीं देती है। इस प्रकार से विश्लेषित, श्री नफाडे की प्रस्तुति कि आरोपी को सीवान जेल से बाहर स्थानांतरित करने से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसके अधिकार को प्रभावित करेगा स्वीकार्य की सिफारिश नहीं करता है।

56. विवाद का अगला अंग शक्ति और अधिकारिता के प्रयोग से संबंधित है। श्री नाफेड द्वारा प्रस्तुत दलील यह है कि 1950 के अधिनियम में किसी प्रावधान के अभाव में स्थानांतरण के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता। उनके अनुसार, किसी भी राज्य की कार्रवाई जो किसी व्यक्ति के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, को कानून के प्राधिकार द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए और कानून के अभाव में, इस तरह के आदेश की अनुमति नहीं है। इस संबंध में उन्होंने मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम ठाकुर भारत सिंह के एक उध्दरण से प्रेरणा ली है। इसका पाठ इस प्रकार हैः

> “किसी भी व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करने वाली सभी कार्यपालिका कार्रवाइयों के पास इसका समर्थन करने का कानून का अधिकार होना चाहिए और अनुच्छेद 358 की शर्तें उस नियम को नहीं तोड़ती हैं। अनुच्छेद 358 स्पष्ट रूप से राज्य को विधायी या कार्यकारी कार्रवाई करने के लिए अधिकृत करता है, बशर्ते कि ऐसी कार्रवाई करने या करने के लिए राज्य सक्षम हो, लेकिन संविधान के भाग III में निहित प्रावधानों के लिए। अनुच्छेद 358 का तात्पर्य यह नहीं है कि राज्य को नागरिकों और अन्य लोगों के पूर्वाग्रह पर कार्रवाई करने का मनमाना प्राधिकार दिया जाएःइसमें केवल यह उपबंध किया गया है कि जब तक आपात स्थिति की उद्घोषणा के लिए विधियां अधिनियमित की जा सकती हैं और विधिक प्राधिकार के अनुसरण में अनन्य कार्रवाई की जा सकती है, जो यदि अनुच्छेद 19 के उपबंध प्रवर्तन में होते तो अविधिमान्य होते।”

57. उपर्युक्त विवाद में एक बुनियादी गलतफहमी है और इसलिए ठाकुर भरत सिंह (पूर्वोक्त) में प्राधिकारी का कोई उपयोग नहीं है। इस मामले में किसी भी राज्य की कार्रवाई को चुनौती नहीं दी जा रही है। पूर्वाग्रह की दलील जो दी गई है, उसके पास कोई पैर नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने निर्देशों के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है.यह कानून में अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायिक कार्य और विधायी कार्य के बीच अंतर है, और इसी तरह कार्यकारी कार्य और न्यायालय से एक निर्देश है। यह पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के लिए समिति, पश्चिम बंगाल एवं अन्य के मामले में संविधान पी० द्वारा स्वस्थ रूप से स्पष्ट किया गया है। इस मामले में यह सवाल उठा कि क्या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 (संक्षेप में, 'विशेष पुलिस अधिनियम') के तहत स्थापित सीबीआई को किसी संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश दे सकता है, जो राज्य सरकार की सहमति के बिना किसी राज्य के क्षेत्राधिकार के भीतर हुआ है। विशेष पुलिस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का उल्लेख करने के पश्चात् न्यायालय ने यह प्रश्न उठाया कि केन्द्रीय सरकार की शक्तियों पर लगाये गए प्रतिबंधों आवश्यक परिवर्तनों के साथ-साथ संवैधानिक न्यायालयों को भी लागू करेगी और विभिन्न प्राधिकरणों के प्रति निर्देश करेगी, जिनमें से संबंधित निष्कर्षों को हम पुनः प्रस्तुत करते हैंः

> “(i) संविधान के भाग 3 में प्रतिष्ठापित मूल अधिकार अंतर्निहित हैं और किसी संवैधानिक या सांविधिक उपबंध द्वारा समाप्त नहीं किए जा सकते। कोई भी कानून जो ऐसे अधिकारों को निरस्त करता है या कम करता है, वह बुनियादी ढांचे के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा। भाग 3 के अधीन गारंटीकृत अधिकारों पर विधि के वास्तविक प्रभाव और प्रभाव को यह अवधारित करते समय ध्यान में रखना होगा कि यह मूल संरचना को नष्ट करता है या नहीं।

(ii) संविधान का अनुच्छेद 21 अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाय व्यक्तियों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण का प्रयास करता है। उक्त अनुच्छेद अपने व्यापक प्रयोग में न केवल अभियुक्त के अधिकारों के प्रवर्तन को बल्कि पीड़ित के अधिकारों को भी अपने दायरे में लेता है। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह संज्ञेय अपराध के किसी भी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच का प्रावधान करते हुए नागरिक के मानवाधिकारों को लागू करे, जिसमें उसके अपने अधिकारी शामिल हो सकते हैं। कतिपय स्थितियों में अपराध का कोई साक्षी भी राज्य से संरक्षण की मांग कर सकता है और उसे राज्य द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाएगा।

(iii) संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय को और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखते हुए न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान के मूल ढांचे का एक अभिन्न हिस्सा है, संसद का कोई भी अधिनियम संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियों को लागू करने के संबंध में मौलिक अधिकारों का अपवर्जित या कम नहीं कर सकता है। वास्तव में, ऐसी शक्ति संविधान के भाग 3 और अन्य भागों में सन्निहित संविधान के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप देने के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, एक संघीय संविधान में, संसद और राज्य विधानमंडल के बीच विधायी शक्तियों के वितरण में विधायी शक्तियों की सीमा शामिल होती है और इसलिए, यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया गया है, संसद के अलावा किसी अन्य प्राधिकरण की आवश्यकता होती है। न्यायिक पुनर्विलोकन न केवल संसद और राज्य विधानमंडलों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण को प्रभावी बनाने के लिए अंतिम मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है, बल्कि प्रत्येक निकाय द्वारा किसी भी उल्लंघन को दर्शाना भी आवश्यक है। अतः, लार्ड स्टेन के शब्दों में न्यायिक पुनर्विलोकन

शक्तियों के पृथक्करण के सिध्दांत, विधि के शासन, संवैधानिकता के सिद्धांत और न्यायिक पुनर्विलोकन की पहुंच के सिद्धांतों के संयोजन द्वारा न्यायोचित है।

(iv) यदि किसी विधायी कार्रवाई से संघीय ढांचे का उल्लंघन होता है तो संविधान यह सुनिश्चित करके संघीय ढांचे की रक्षा करने का ध्यान रखता है कि न्यायालय संविधान के संरक्षक और व्याख्याकार के रूप में कार्य करें और अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपचार प्रदान करता है, जब भी कोई उल्लंघन करने का प्रयास किया जाता है। इन परिस्थितियों में, संविधान को बनाए रखने और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए अनुच्छेद 32 या 226 के तहत शक्ति का उपयोग करते हुए उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा किसी भी निर्देश को संघीय ढांचे का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

(v) संविधान द्वारा संसद पर प्रतिबंध और किसी अधिनियमन के तहत संसद द्वारा कार्यपालिका पर प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत न्यायपालिका की शक्ति पर प्रतिबंध के बराबर नहीं हैं।"

और अंततः, न्यायालय ने निर्देश का इस प्रकार उत्तर दियाः

"अंतिम विश्लेषण में, हमारे पास भेजे गए प्रश्न का उत्तर यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए, सीबीआई को किसी संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश दिया गया है, जो राज्य की सहमति के बिना किसी राज्य के क्षेत्र के भीतर कथित रूप से किया गया है, न तो संविधान के संघीय ढांचे का उल्लंघन करेगा और न ही शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा और कानून में मान्य होगा। नागरिकों की नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षक होने के नाते, इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों के पास न केवल शक्ति और अधिकारिता है, बल्कि सामान्य रूप से भाग III द्वारा और विशेष

रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों की उत्साहपूर्वक एवं सतर्कतापूर्वक रक्षा करने का दायित्व भी है।"

58. उपर्युक्त निर्णय हमें इस आधार पर श्री नाफेड के निवेदन को निरस्त करने के लिए विवश करता है कि जब 1950 के अधिनियम के अधीन कोई शक्ति प्रदत्त नहीं की जाती है तो न्यायालय शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है या जब शक्ति में कटौती की जाती है तो न्यायालय निदेश जारी नहीं कर सकता है। संविधान पीठ में विवाद उच्च न्यायालय द्वारा राज्य के क्षेत्र के भीतर होने वाले अपराध के संबंध में सीबीआई को जांच हस्तांतरित करने के निर्देश से संबंधित था और इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि विशेष पुलिस अधिनियम में निहित निषेध के बावजूद उच्च न्यायालय को इस तरह का निर्देश देने का अधिकार है इसलिए 1950 के अधिनियम के तहत शक्ति का गैर-प्रदान उच्च न्यायालय को नहीं रोकेगा एवं वह अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी मामले को परिस्थितियों के आधार पर राज्य के भीतर एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित कर सकता है।

59. इस मामले में जो प्रश्न उठता है वह संविधान के अनुच्छेद 32,142 और 144 के तहत अधिकारिता के प्रयोग से संबंधित है। श्री नफाडे द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अनुच्छेद 142 के तहत कोई आदेश संविधान के भाग 3 के तहत अधिकारों का उल्लंघन करके पारित नहीं किया जा सकता है और न ही ऐसा कोई आदेश संबंधित कानून के मूल प्रावधानों के साथ असंगत हो सकता है। उन्होंने हमारा ध्यान प्रेमचंद गर्ग और एक अन्य बनाम उत्पाद शुल्क आयुक्त वाले मामले में संविधान पीठ के निर्णय की ओर दिलाया है। उक्त मामले में, बहुमत ने निर्णय दिया किः

"12. ..... इस न्यायालय की शक्तियां निःसंदेह बहुत व्यापक हैं और उनका आशय न्याय के हित में होना है और हमेशा होंगी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है

कि इस न्यायालय द्वारा कोई आदेश दिया जा सकता है जो संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों से असंगत है.पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए यह न्यायालय जो आदेश दे सकता है, वह न केवल संविधान द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकारों के अनुरूप होना चाहिए, बल्कि यह प्रासंगिक सांविधिक कानूनों के मूल प्रावधानों से भी असंगत नहीं हो सकता है.इसलिए, हमें नहीं लगता कि अनुच्छेद 142 (1) को लागू करना संभव होगा जो इस न्यायालय को ऐसी शक्तियां प्रदान करता है जो अनुच्छेद 32 के प्रावधानों का उल्लंघन कर सकती हैं।"

60. ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक और एक अन्य को आधार मानकर श्री नफाडे आग्रह करेंगे कि न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसा कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है जो किसी व्यक्ति के मूल अधिकार को प्रभावित करेगा। अंतुले के मामले में, आर. एस. नायक बनाम ए. आर. अंतुले वाले मामले में पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने विचारण में तेजी लाने के लिए मामले को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत विशेष न्यायालय से उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया था। ऐसा करने में, जैसा कि सात न्यायाधीशों द्वारा दिए गए बाद के निर्णय में महसूस किया गया था, न्यायालय ने आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1952 की धारा 7 (2) के अनिवार्य प्रावधान को नजरअंदाज कर दिया था और इसलिए, अंतुले के दो अधिकारों का उल्लंघन किया गया था, एक, अभियुक्त पर केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता था और दूसरा, उसे उच्च न्यायालय में वैधानिक अपील करने का अधिकार था। अदालत ने फैसला सुनाया कि संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है। अनुच्छेद 142 के अधीन सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए न्यायमूर्ति सब्यसाची मुखर्जी ने (उस समय हिज लार्डशिप के रूप में) यह निर्णय दियाः

"इस तथ्य ने चूँकि नियम विवेकाधीन था, स्थिति को नहीं बदला। हालांकि अनुच्छेद 142 (1) उच्चतम न्यायालय को पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए कोई भी आदेश पारित करने का अधिकार देता है, लेकिन न्यायालय संविधान के भाग 3 द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकारों के विपरीत कोई आदेश नहीं दे सकता है। अनुच्छेद 142 (1) और अनुच्छेद 32 के बीच विसंगति का कोई सवाल ही नहीं उठता था। न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर ने इस न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीशों की ओर से बोलते हुए कहा कि अनुच्छेद 142 (1) ने इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 32 के प्रावधानों का उल्लंघन करने की कोई शक्ति नहीं दी है। न ही अनुच्छेद 145 ने इस न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की है, जो इसे मौलिक अधिकार के प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए सशक्त बनाता है। रिपोर्ट के पृष्ठ 899 पर न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर ने दोहराया कि निःसंदेह इस न्यायालय की शक्तियां बहुत व्यापक हैं और उनका आशय न्याय के हित में है और उनका प्रयोग हमेशा किया जाएगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस न्यायालय द्वारा कोई आदेश दिया जा सकता है जो संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों से असंगत है। इस बात पर जोर दिया गया कि पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए यह न्यायालय जो आदेश दे सकता है, वह न केवल संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के अनुरूप होना चाहिए, बल्कि यह प्रासंगिक सांविधिक विधियों के मूल प्रावधानों से भी असंगत नहीं हो सकता है (जोर दिया गया)। इसलिए अदालत ने कहा कि यह मानना संभव नहीं है कि अनुच्छेद 142 (1) इस न्यायालय को शक्तियां प्रदान करता है जो अनुच्छेद 32 के प्रावधानों का उल्लंघन कर सकता है।"

61. उपर्युक्त उक्ति के आधार पर, श्री नफाडे द्वारा यह प्रचार किया जाता है कि जब किसी अभियुक्त के एक राज्य से दूसरे राज्य में अंतरण की 1950 के अधिनियम के अधीन परिकल्पना नहीं की गई है और निष्पक्ष विचारण आदेश की अवधारणा कि एक अभियुक्त

का विचारण निष्पक्षापूर्वक किया जाना है और उसे किसी दूर जंग है पर नहीं ले जाना चाहिए जहाँ वह अलग-अलग और अपने रिष्तेदार एवं पारिवारिक वातावरण से कटा हआ महसुस करेगा।

> “यह संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत दिए गए अधिकारों का उल्लंघन होगा। उन्होंने आगे दलील दी कि अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता है जो मूल अधिकार में सेंध लगाएगा या वैधानिक प्रावधानों के साथ असंगत होगा। उपरोक्त प्रस्तुतीकरण का प्रतिवाद करते हुए, श्री भूषण, याचिकाकर्ताओं के लिए वरिष्ठ वकील ने हमारा ध्यान एक संविधान पीठ द्वारा यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन (पूर्वोक्त) में दिये गए निर्णय की ओर आकर्षित किया है इसके पारा-83 में न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलैया (जैसा कि उस समय हिज लार्डशिप) बहुमत के लिए बोलते हुए इस प्रकार मत व्यक्त कियाः संविधान के अनुच्छेद 142 (1) के तहत इस न्यायालय की शक्तियों के दायरे से संबंधित तर्कों में बचे कुछ गलतफहमियों को दूर करना आवश्यक है। ये गंभीर सार्वजनिक महत्व के मामले हैं। यह प्रस्ताव कि अनुच्छेद 142 (1) के तहत सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों को सीमित करने के लिए किसी भी साधारण कानून में एक प्रावधान, चाहे वह किसी भी सार्वजनिक नीति के महत्व पर आधारित हो, अनुचित और गलत है। गर्ग और अंतुले दोनों मामलों में संवैधानिक प्रावधानों और संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन का मुद्दा था। कानूनी प्रावधानों के साथ असंगतता के प्रभाव के बारे में टिप्पणियां उन मामलों में वास्तव में अनावश्यक थीं क्योंकि अंतिम विश्लेषण में निर्णयों का आधार संवैधानिक अधिकारों का हनन था। हम श्री नरीमन से सहमत हैं कि जहां तक आपराधिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने का संबंध है, अनुच्छेद 142 के अधीन न्यायालय की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 या 321 या 482 या उन सभी को मिलाकर समाप्त नहीं हुई है। अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति बिल्कुल अलग

स्तर पर और एक अलग गुणवत्ता की है। सामान्य कानूनों में निहित प्रतिबंध या सीमाएं या प्रावधान अनुच्छेद 142 के तहत संवैधानिक शक्तियों पर स्वतः प्रतिबंध या सीमाओं के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं। कानूनों में इस तरह के प्रतिबंध या सीमाएं किसी विशेष कानून की योजना को मूर्त रूप दे सकती हैं और उस प्राधिकरण या न्यायालय की प्रकृति और स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रतिबिंबित कर सकती हैं, जिसे किसी उपयुक्त तरीके से सीमित शक्तियां प्रदान करने पर विचार किया गया है। ये सीमाएं आवश्यक रूप से सार्वजनिक नीति के किसी भी मौलिक विचार को प्रतिबिंबित या आधारित नहीं कर सकती हैं। अटॉर्नी जनरल श्री सोराबजी ने गर्ग के मामले का जिक्र करते हुए कहा कि मूल कानून के स्पष्ट वैधानिक प्रावधानों के साथ असंगतता के कारण अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों पर सीमा का अर्थ वास्तव में किसी भी मूल वैधानिक कानून में निहित कुछ स्पष्ट निषेध के रूप में समझा जाना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया कि यदि 'निषेध' अभिव्यक्ति को 'प्रावधान' के स्थान पर पढ़ा जाए तो यह शायद उचित विचार को व्यक्त करेगा। लेकिन हम सोचते हैं कि इस तरह के निषेध को सार्वजनिक नीति के कुछ अंतर्निहित बुनियादी और सामान्य मुद्दों पर आधारित दिखाया जाना चाहिए न कि किसी विशेष वैधानिक योजना या पैटर्न के लिए प्रासंगिक। एक बार फिर यह कहना पूरी तरह से गलत होगा कि अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियां इस तरह के स्पष्ट वैधानिक प्रतिबंधों के अधीन हैं। इससे यह विचार प्रकट होगा कि सांविधिक प्रावधान किसी संवैधानिक प्रावधान पर हावी हो जाते हैं। इस विचार को अभिव्यक्त करने का उचित तरीका यह है कि अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए और किसी कारण या मामले के पूर्ण न्याय की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करते हुए, उच्चतम न्यायालय सार्वजनिक नीति के कुछ मौलिक सिद्धांतों पर आधारित कोई मूल वैधानिक प्रावधान में अभिव्यक्त प्रतिबंधों पर और तदनुसार अपनी शक्तियों और विवेक के प्रयोग को

विनियमित करने पर ध्यान देगा। यह प्रस्ताव अनुच्छेद 142 के तहत न्यायालय की शक्तियों से संबंधित नहीं है, बल्कि केवल किसी कारण या मामले के 'पूर्ण न्याय' से संबंधित है या नहीं है और शक्ति के प्रयोग के औचित्य के अंतिम विश्लेषण में है। क्षेत्राधिकार की कमी या अक्षमता का कोई सवाल ही नहीं उठता।"

[जोर दिया गया]

62. श्री नाफेड द्वारा आग्रह किया गया है कि उक्त निर्णय अनिश्चित है क्योंकि यह अंतुले (ऊपर) में जो कहा गया है उसके विपरीत है। यह कहना पर्याप्त होगा कि हम यूनियन कार्बाइड कारपोरेशन (पूर्वोक्त) में अभिव्यक्त इस दृष्टिकोण से बंधे हुए हैं जिसमें विशेष रूप से अंतुले के मामले के अनुपात की सराहना की है। इसके अलावा, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन में जो (पूर्वोक्त) न्यायमूर्ति वेंकटचलैया द्वारा कहा गया है, न्याय की संवैधानिक योजना के अनुरूप है।

63. विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नफाडे ने भी उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में दिये गए निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उक्त मामले में, संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण शक्ति से संबंधित न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय की पूर्ण शक्तियां न्यायालय में अंतर्निहित हैं और यह उन शक्तियों का पूरक है जो विभिन्न कानूनों द्वारा न्यायालय को विशेष रूप से प्रदान की गई हैं, हालांकि उन कानूनों द्वारा सीमित नहीं हैं। पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने की दृष्टि से ये शक्तियां संविधियों से स्वतंत्रता भी विद्यमान हैं। ये शक्तियां बहुत व्यापक आयाम की हैं और पूरक शक्तियों की प्रकृति की हैं। यह शक्ति कानूनों के अलावा क्षेत्राधिकार के एक अलग और स्वतंत्रता आधार के रूप में मौजूद है। यह आधार पर खड़ा है और मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में अन्याय को रोकने और पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए इसके

प्रयोग के लिए एक अलग और संभवतः व्यापक आधार पर रखा जा सकता है। इस प्रकार, यह पूर्ण अधिकारिता शक्ति का अवशिष्ट स्रोत है, जिसका यह न्यायालय आवश्यकता पड़ने पर उपयोग कर सकता है, जब भी ऐसा करना यथोचित और न्यायसंगत हो, और विशेष रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए कि पक्षकारों के बीच कानून के अनुसार पूर्ण न्याय हो। इसके पश्चात् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित कियाः

> "इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह अन्य सभी शक्तियों के लिए एक अपरिहार्य अनुषंगी है और अधिकारिता के नियंत्रण संयुक्त है और न्याय की धारा के अवरोध या बाधा को रोकने के लिए न्यायालय के हाथों में एक मूल्यवान हथियार के रूप में कार्य करता है। हालांकि, यह याद रखने की जरूरत है कि अनुच्छेद 142 द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्तियाँ उपचारात्मक प्रकृति की होने से यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता जो न्यायालय को उसके समक्ष लंबित किसी मामले पर विचार करते समय किसी वादी के मूल अधिकारों की उपेक्षा करने के लिए प्राधिकृत करती है। इस शक्ति का उपयोग मामले या न्यायालय के विचाराधीन हेतुक के लिए लागू मूल विधि के स्थान पर नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 142, अपने आयाम की चौड़ाई के साथ भी, किसी विषय से संबंधित अभिव्यक्त सांविधिक उपबंधों की उपेक्षा करके और इस प्रकार कुछ अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने के लिए एक नई इमारत का निर्माण करने के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है, जहां पहले कोई नहीं था।"

64. न्यायालय ने तत्पश्चात् निम्नलिखित के लिए प्राधिकरणों को निर्दिष्ट किया दिल्ली न्यायिक सेवा संघ बनाम गुजरात राज्य और अन्य, आरई, विनय चंद्र मिश्रा 43, प्रेमचंद गर्ग (उपर्युक्त) और यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशन (उपर्युक्त), के मामले में प्राधिकरणों को निर्दिष्ट किया विशेष रूप से अंतिम निर्णय का पैरा 83 का और आगे बढ़कर कहा- "इस तरह किसी मिथ्या के मामले पर आधारित

“55. यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन बनाम भारत संघदिल्ली न्यायिक सेवा आयोग एसन मामला (उपर्युक्त) और मोहम्मद अनी के मामले में दिये गए निर्णयों का एक सावधानी पूर्वक अध्ययन यह दिखाता है कि न्यायालय ने वास्तव में प्रेम चंद गर्ग मामले (ऊपर) में टिप्पणियों की शुद्धता पर संदेह नहीं किया। तथ्य के रूप में, यह देखा गया कि उन मामलों के स्थापित तथ्यों में, प्रेमचंद गर्ग मामले में की गई टिप्पणियों की कोई प्रासंगिकता नहीं है इस न्यायालय ने उन मामलों में से किसी में भी यह नहीं कहा कि अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों का उपयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा इस विषय से संबंधित मूल वैधानिक प्रावधानों को स्पष्ट रूप से नजरअंदाज किया जा सकता है। तथ्य के रूप में, युनीयन कार्बाइड मामला, ए. आर. अंतुले मामला और दिल्ली न्यायिक सेवा एसन मामला से ली गई टिप्पणियाँ जिसपर और दिया गया है। इस मामले से पता चलता है कि वे प्रेमचंद गर्ग के मामले में बहुमत की टिप्पणियों के साथ किसी भी विवाद में सख्त रूप से नहीं आते हैं। यह कहना एक बात है कि किसी कानून में प्रतिबंध या सीमाएं उस कानून से उत्पन्न लंबित वाद या मामले में पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए अनुच्छेद 142 के तहत अधिकारिता के उपयोग के रास्ते में नहीं आ सकती हैं, लेकिन यह कहना बिल्कुल अलग बात है कि अनुच्छेद 142 के तहत अधिकारिता का उपयोग करते हुए, यह न्यायालय किसी कानून के मूल प्रावधानों की पूरी तरह से अनदेखी कर सकता है, इस विषय से संबंधित आदेश पारित कर सकता है जिसे केवल किसी अन्य कानून में निर्धारित तंत्र के माध्यम से ही हल किया जा सकता है। इस न्यायालय ने यूनियन कार्बाइड मामले (पूर्वोक्त) में या तो स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से ऐसा नहीं कहा और इसके विपरीत यह माना गया है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी मूल वैधानिक विधि के एक्सप्रेस प्रावधानों पर ध्यान देगा और तदनुसार अपनी शक्तियों और विवेक के प्रयोग को विनियमित करेगा।”

[जोर दिया गया]

65. इस संदर्भ में, नरेंद्र चंपकलाल त्रिवेदी बनाम गुजरात राज्य के मामले में दो न्यायधीशों के खंडपीठ के निर्णय को निर्दिष्ट कर सकते हैं। उक्त मामले में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13 (3) के अधीन अधिरोपित दंडादेश को कम करने के संबंध में प्रश्न उठाया गया था। न्यायालय ने विश्वेश्वरैया आयरन एंड स्टील लिमिटेड बनाम अब्दुल गनी एवं अन्यकेशभाई महाभाई बंकर बनाम गुजरात राज्य, लक्ष्मीदास मोरारजी बनाम बेहरोज दाख मदन के मामले में पहले के निर्णयों का उल्लेख किया और अभिनिर्धारित किया।

> "....जहाँ न्यूनतम सजा प्रदान की जाती है, हम सोंचते हैं कि तथाकथित कम करनेवाले कारकों के आधार पर सजा को कम करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना भी बिल्कुल उचित नहीं होगा। यह वैधानिक शासनादेश की जगह लेना और इसके अलावा यह मूल वैधानिक प्रावधान की अनदेखी करने जैसा होगा जो रिश्वत की माँग और स्वीकृति से सम्बंधित एक आपराधिक कृत्य के लिए न्यूनतम सजा निर्धारित करता है। राशि कम हो सकती है लेकिन इस तरह की प्रवृत्ति को रोकना और दबाने के लिए विधायिका ने न्यूनतम सजा निर्धारित की है। यह सर्वोपरि रूप से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि किसी भी स्तर पर भ्रष्टाचार या तो सहानूभूति या उदारता के लायक नहीं है। वास्तव में सजा में कमी एक किस्त जोड़ना जैसा होगा। कानून इस तरह का समर्थन नहीं करता है और सही भी है, क्योंकि भ्रष्टाचार किसी भी राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी को नष्ट कर देता है और अंततः अर्थव्यवस्था को बांझ बना देता है।"

इस प्रकार, न्यायपीठ ने मूल वैधानिक प्रावधानों को नजरअंदाज करना उचित नहीं समझा।

66. इस संबंध में, शमसु सुहारा बीवी बनाम जी. एलेक्स और अन्य के मामले में हम प्राधिकारी के प्रति भी निर्देश कर सकते हैं। इस मामले में न्यायालय विक्रय करार से संबंधित एक वाद पर विचार कर रहा था। समझौते के विशिष्ट निष्पादन के अलावे संविदा उल्लंघन के लिए मआवजे की राहत को शामिल करने के लिए वादपत्र में संशोधन के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई थी विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 की धारा 28 के तहत राहत का दावा किया गया था लेकिन उक्त अधिकारी की धारा 21 के तहत नहीं उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि धारा 28 मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगी बल्कि उक्त अधिनियम की धारा 21 के तहत राहत प्रदान की जाएगी। इस संदर्भ में, न्यायालय ने फैसला सुनाया कि उच्च न्यायालय धारा 21 के तहत विशिष्ट प्रदर्शन की राहत के अलावा उस सम्बंध में कीगई प्रार्थना के अभाव में या तो बाद में बाढ़ के किसी भी चरण में उसी में विशिष्ट प्रदर्शन की राहत के अलावा मुआवजे की राहत को शामिल करने की कार्यवाही हेतु संशोधन नहीं करेगा। कानून के प्रावधानों के वशीभूत इस तरह की राहत प्रदान करना, इसके विपरीत व्यक्त करना अनुमेय नहीं है। न्यायसंगत विचारों पर न्यायालय कानून के प्रावधानों की उपेक्षा या अनदेखी कर सकता है और समानता को कानून के अधीन होना चाहिए।

67. उपर्युक्त प्राधिकारियों के संदर्भ में, श्री नेफेड की प्रस्तुति की सराहना की जानी चाहिए। उनके द्वारा यह प्रचार किया जाता है कि 1950 के अधिनियम की धारा 3 किसी कैदी को कुछ परिस्थितियों के अधीन राज्य से बाहर स्थानांतरित करने की अनुमति देती है। इसलिए, संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का उपयोग करते समय किसी अन्य परिस्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती है क्योंकि यह कानून के मूल प्रावधानों के विपरीत होगा। वह आगे प्रस्तुत करता है कि यह न्यायालय अनुच्छेद १४२ के तहत कानून नहीं बना सकता है और समानता को कानून के प्रावधानों का पालन करना चाहिए.

68. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि समानता कानून पर हावी नहीं हो सकती। जहां तक प्रथम पहलू का संबंध है, हमें उस व्यापक मंच की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है जिस पर श्री नेफेड ने अपना तर्क आधारित किया है। यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि 1950 के अधिनियम की धारा 3 राज्य सरकार को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह दूसरे राज्य से परामर्श करने के बाद किसी अभियुक्त को दूसरे राज्य में स्थानांतरित कर सकती है। राज्य द्वारा इस तरह की कार्रवाई को उन परिस्थितियों द्वारा पूरी तरह नियंत्रित किया जाना चाहिए जिनका उल्लेख धारा 3 के तहत किया गया है। जब राज्य किसी अन्य राज्य की सहमति से कोई आदेश पारित करता है, तो वह उन परिस्थितियों से बंधा हुआ होता है जो 1950 के अधिनियम की धारा 3 (1) के तहत अभिनिर्धारित की गई हैं, लेकिन जब निष्पक्ष सुनवाई का मुद्दा संवैधानिक न्यायालय के समक्ष आता है, तो 1950 के अधिनियम की धारा 3 को इस तरह से नहीं माना जा सकता है कि न्यायालय को नियंत्रित करे जो स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई के लिए अनिवार्य और आवश्यक है। सांविधिक शक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए जो न्याय के हित में कार्य करने और स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय की शक्ति को नकारात्मक और कम करता हो, जो कानून के शासन के लिए सर्वोच्च महत्व का हो। यह केवल कार्यपालिका की शक्ति को नियंत्रित करता है। इसलिए हम इस संबंध में श्री नफाडे के कथन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

69. वर्तमान में, हम उन तथ्यों का उल्लेख करेंगे जो हमने आरंभ में बताए हैं। तीसरे प्रत्यर्थी को पहले ही हिस्ट्रीशीटर टाइप 'क' के रूप में घोषित किया जा चुका है, जो सुधार से परे है। आज तक उनके खिलाफ 75 मामले दर्ज किए जा चुके हैं, जिनमें से 10 मामलों में उन्हें दोषी ठहराया जा चुका है और वर्तमान में 45 मामलों में मुकदमे का सामना कर रहे हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है कि उन्हें 20 मामलों में बरी कर दिया गया है। 45 मामलों में से 21 ऐसे मामले हैं जिनमें अधिकतम सजा 7 वर्ष या उससे अधिक है। उस पर 15 ऐसे मामलों में मामला दर्ज किया गया है जहां वह हिरासत में है और ऐसा ही एक मामला

याचिकाकर्ता के तीसरे पुत्र की हत्या से संबंधित है और अन्य दो मामले हत्या के प्रयास के हैं। वह इलाके के प्रभावशाली व्यक्ति हैं, क्योंकि वह दो बार विधानसभा के प्रतिनिधि रहे हैं और चार बार संसद सदस्य के रूप में चुने गए हैं। यह सामान्य और स्वाभाविक मामला नहीं है। इस पर उपर्युक्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स में विचार किया जाना है। एक हिस्ट्रीशीटर का आपराधिक इतिहास होता है और यह कभी-कभी समाज में आतंक बन जाता है। नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य वाले मामले में, इस न्यायालय को एक हिस्ट्रीशीटर को दी गई जमानत को रद्द करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी करने के लिए मजबूर किया गयाः

> “16....एक ऐसी लोकतांत्रिक व्यवस्था, जो कानून के शासन से जुड़ी हो, बेचैनी से स्वतंत्रता की रक्षा करती है। लेकिन, एक सारगर्भित और महत्वपूर्ण व्यक्ति की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं है। कानून की प्रक्रिया के माध्यम से समाज अपने सामूहिक विवेक से उस स्वतंत्रता को वापस ले सकता है जो उसने किसी व्यक्ति को दी है जब कोई व्यक्ति सामूहिक और सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा बन जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आवाज को इस हद तक पिरामिड नहीं किया जा सकता है कि जिससे समाज में कोलाहल और अराजकता फैले। समाज अपने सदस्यों से जिम्मेदारी और जवाबदेही की अपेक्षा करता है और वह चाहता है कि नागरिक कानून का पालन करें और उसका सम्मान करें। कोई भी व्यक्ति सामाजिक धारा के मूल में एक संकीर्णता पैदा करने का प्रयास नहीं कर सकता है। यह अस्वीकार्य है। इसलिए, जब कोई व्यक्ति असंगत तरीके से व्यवहार करता है और समाज द्वारा नामंजूर की जाने वाली अव्यवस्थित चीजों की शुरुआत करता है, तो इसके कानूनी परिणाम भुगतने पड़ते हैं। उस स्तर पर, न्यायालय का एक कर्तव्य है। वह अपने पवित्र दायित्व को नहीं छोड़ सकता और अपनी इच्छा या इच्छा से कोई आदेश पारित नहीं कर सकता। इसे कानून के स्थापित मापदंडों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए।”

हमने इस बात पर प्रकाश डालने के लिए उपर्युक्त प्राधिकारी को निर्दिष्ट किया है कि किस प्रकार न्यायालय ने जमानत के आदेश का निरसन करते समय शांतिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की सर्वोपरिता को ध्यान में रखा है। यह जमानत मंजूर करने वाले आदेश ऐसे अभियुक्त के आपराधिक पूर्ववृत्त पर उचित विचार किए बिना पारित किया गया था जिनके कार्यों ने सामाजिक धारा में अव्यवस्था पैदा की थी।

70. श्री भूषण, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव और अन्य में प्राधिकरण। पर अत्यधिक निर्भर थे उनके द्वारा यह आग्रह किया गया कि उक्त मामले और वर्तमान मामला में तथ्यात्मक मैट्रिक्स समान है.उक्त मामले में, न्यायालय ने ध्यान दिया कि प्रत्यर्थी राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव, जब वह न्यायिक हिरासत में था, एक चुनावी सभा को संबोधित करते हुए पाया गया था.अदालत ने संबंधित अधिकारियों से एक रिपोर्ट मांगी और उनसे यह स्पष्ट करने की मांग की कि उक्त प्रतिवादी को एक सार्वजनिक सभा को संबोधित करने के लिए किस प्राधिकर को अनुमति दी गई थी। सीबीआई द्वारा दाखिल रिपोर्ट से पता चला है कि प्रत्यर्थी ने अपने साथ मधेपुरा गए पुलिस अधिकारियों के साथ मिलकर एक सार्वजनिक सभा को संबोधित किया था और उसके साथ गया एस्कॉर्ट उसे विभिन्न स्थानों पर ले गया जहां प्रत्यर्थी प्रोडक्शन वारंट के दायरे से बाहर जाना चाहता था.यह न्यायालय की जानकारी में आया था कि यद्यपि उसकी जमानत रद्द कर दी गई थी, अभियुक्त को कभी जेल में नहीं ले जाया गया था और वास्तव में, जब उन्हें जमानत रद्द होने के बाद गिरफ्तार किया गया, तो उन्हें पटना ले जाया गया और उनकी जांच के लिए एक तत्काल मेडिकल बोर्ड का गठन किया गया, जिसने यह राय व्यक्त की कि आरोपी को पटना मेडिकल कॉलेज में चिकित्सा उपचार की आवश्यकता है और उसे उक्त मेडिकल कॉलेज में रहने की अनुमति दी गई। विभिन्न अन्य तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि प्रत्यर्थी के मन में कानून के शासन के लिए कोई सम्मान नहीं था और न ही वह, किसी भी तरह से, अपने

गैरकानूनी कार्यों के परिणामों से डरा हुआ था.यह भी देखा गया कि, यह इस तथ्य से स्पष्ट था कि प्रत्यर्थी के कुछ अवैध कार्य तब भी किए गए थे जब जमानत की मंजूरी के लिए उसका आवेदन लंबित था.जब बेउर जेल, पटना से राज्य के बाहर किसी जेल में स्थानांतरण का मुद्दा उठा तो यह तर्क दिया गया कि यह उनके मौलिक अधिकार को प्रभावित करेगा जैसा कि सुनील बत्रा (2) (पूर्वोक्त) में वर्णित किया गया है। न्यायालय ने 1950 के अधिनियम की धारा 3 का उल्लेख किया और उस संदर्भ में यह राय व्यक्त की कि एक उपयुक्त मामले में, ऐसा अनुरोध विचाराधीन कैदी या हिरासत में लिए गए व्यक्ति द्वारा भी किया जा सकता है और इसके विपरीत कोई कानूनी प्रावधान नहीं होने के कारण, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है।

71. दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उच्चतम न्यायालय बार एसोसिएशन (उपर्युक्त) और यूनियन कार्बाइड कार्पोरेशन (उपर्युक्त) मामले में प्राधिकारियों को संदर्भित कर इस प्रकार फैसला दिया

> “29. कुछ हलकों में यूनियन कार्बाइड (ऊपर) के निर्णय की शुद्धता के बारे में कुछ आलोचनाओं के बावजूद हम यह ध्यान में रख सकते हैं कि मोहम्मद अनीस बनाम भारत संघ (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 142 (1) के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति को दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धारा द्वारा कम नहीं किया जा सकता है।”

72. इसके पश्चात् न्यायालय ने निम्नलिखित में प्राधिकरणों को निर्दिष्ट किया कर्नाटक राज्य बनाम एपी राज्य और अन्य, पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम संपत लाल और अन्य अशोक कुमार गुप्ता और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में प्राधिकरणाों को संदर्भित कर यह विचार व्यक्त किए गएः

“43. यह सच है कि एक सामान्य मुकदमे में दंड प्रक्रिया संहिता में आरोपी को मुकदमे में उपस्थित होने की आवश्यकता होती है, लेकिन इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में एक प्रक्रिया विकसित की जानी चाहिए, जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोपी को दिए गए अधिकारों के विपरीत नहीं होगी, लेकिन साथ ही न्याय प्रशासन की रक्षा भी करेगी। अतः, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा गया है महाराष्ट्र राज्य बनाम डॉ. प्रफुल्ल बी. देसाई और साक्षी बनाम भारत संघ के मामले में अभिनिर्धारित किया गया हम समझते हैं कि संहिता की उपर्युक्त आवश्यकता को वीडियो कांफ्रेंसिंग सुविधा द्वारा परीक्षण विचारण का निर्देश देकर पूरा किया जा सकता है। हमारी राय में, यह उन दुर्लभ मामलों में से एक है जिसमें बिहार में निरोध के स्थान से सुनवाई की अदालत में बार-बार जाने से प्रतिवादी और मामले में शामिल अन्य दोनों की सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, इसके अलावा राज्य के खजाने पर भारी बोझ पड़ेगा। इस पृष्ठभूमि में सीबीआई ने प्रस्तुत किया है कि चेन्नई, पलायमकोट्टई केंद्रीय कारागार, वेल्लोर केंद्रीय कारागार, कोयम्बटूर केंद्रीय कारागार सभी तमिलनाडु राज्य में और मैसूर केंद्रीय कारागार कर्नाटक राज्य में वीडियो-कॉन्फ्रेंसिंग सुविधाएं हैं। इसलिए प्रतिवादी को इनमें से किसी भी जेल में स्थानांतरित किया जा सकता है।

44. जबकि यह सच है कि प्रतिवादी को बिहार राज्य से बाहर स्थानांतरित करना न्याय के हित में आवश्यक है, हमें प्रत्यर्थी को उपलब्ध कुछ बुनियादी अधिकारों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है, जिन्हें सीबीआई द्वारा सुझाए गए किसी भी जेल में प्रत्यर्थी को स्थानांतरित करके इनकार नहीं किया जाना चाहिए। यह प्रतिवादी की पत्नी और बच्चों के लिए कुछ कठिनाई पैदा करेगा, जिनके बारे में हमें बताया गया है कि वे सामान्य रूप से दिल्ली के निवासी है उनकी पत्नी संसद सदस्य है और दो छोटे बच्चे दिल्ली में स्कूल जाते हैं। मामले की समग्र तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान

में रखते हुए, हम यह उचित समझते हैं कि प्रत्यर्थी को दिल्ली की तिहाड़ जेल में स्थानांतरित कर दिया जाए और हम तिहाड़ जेल के प्रभारी वरिष्ठतम अधिकारी को ऐसे प्रबंध करने का निर्देश देते हैं जो वह इसमें ऊपर उल्लिखित प्रकृति के प्रत्यर्थी की गतिविधियों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक समझते हैं और उसे तब तक कोई विशेष विशेषाधिकार की अनुमति नहीं देंगे जब तक कि वह कानून में इसके लिए हकदार नहीं है.तिहाड़ जेल में उसकी हिरासत के दौरान उसके आचरण की विशेष रूप से निगरानी की जाएगी और यदि आवश्यक हुआ तो इस अदालत को सूचित किया जाएगा। हालांकि, प्रतिवादी तिहाड़ जेल मैनुअल के तहत प्रदान किए गए अपने परिवार के दौरे के लाभ का हकदार होगा। उन्होंने बताया, वह ऐसे वर्गीकरण और विधि में उसे उपलब्ध ऐसी सुविधाओं का भी हकदार होगा।

45. हम यह भी निर्देश देते हैं कि पटना में मामले की सुनवाई अदालत द्वारा अपीलकर्ता की उपस्थिति के बिना जारी रहेगी, ऐसी उपस्थिति का दूर करते हुए और जहां तक संभव हो वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की सहायता से किया जाएगा। तथापि, यदि प्रत्यर्थी किसी विशिष्ट साक्षी के कथन के अभिलिखित किए जाने के दौरान उपस्थित होने के एकमात्र प्रयोजन के लिए अपने अंतरण के लिए कोई आवेदन करता है तो उस पर विद्वत सत्र न्यायाधीश द्वारा उसकी योग्यता के आधार पर विचार किया जाएगा और यदि वह यह उचित समझता है तो वह उस सीमित प्रयोजन के लिए अभियुक्त को उसके समक्ष पेश प्रस्तुत के लिए तिहाड़ जेल के प्राधिकारियों को निदेश दे सकता है। तथापि, यह केवल एक दुर्लभ और महत्वपूर्ण स्थिति में होगा और यदि ऐसा स्थानांतरण आदेश किया जाता है तो प्रत्यर्थी को तिहाड़ जेल से संबंधित अदालत में ले जाया जाएगा और यदि आवश्यकता हुई तो उसे सुनवाई के स्थान पर समुचित जेल में और तिहाड़ जेल के अधिकारियों द्वारा विशेष रूप से प्रतिनियुक्त की जाने वाली पुलिस की हिरासत और प्रभार में रखा जाएगा, जो उस तथ्यात्मक स्थिति

को ध्यान में रखेगा जिसमें प्रत्यर्थी को पटना से दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया है।"

उपरोक्त प्राधिकारी उपलब्ध मामले की निकटता में है। वास्तव में, वर्तमान मामला एक अलग तस्वीर पेश करता है और एक दुखद परिदृश्य प्रस्तुत करता है जो हमें दोनों पक्षों के लिए निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांत की रक्षा करते हुए तत्काल कदम उठाने के लिए मजबूर करता है।

73 यह उल्लेख करना उपयोगी है कि डॉ. प्रफुल्ल बी. देसाई (पूर्वोक्त) में यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से साक्ष्य का अभिलेखन विधि में विधिमान्य है।

74. उपर्युक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, हम अपने निष्कर्षों और निर्देशों को क्रमबद्ध रूप से अभिलिखित करते हैंः

(i) निष्पक्ष विचारण का अधिकार अभियुक्त के परिप्रेक्ष्य में, जैसा कि माना जाता है, एकमात्र पूर्ण नहीं है। यह अपने दायरे में लेता है और पीड़ितों और व्यापक रूप से समाज के अधिकार का विस्तार करता है। इन कारकों से सामूहिक रूप से कानून का शासन अर्थात स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई का संकेत और गठन होगा।

(ii) निष्पक्ष विचारण, जो अनुच्छेद 21 के अधीन मौलिक अधिकार और वैधानिक संरक्षण के रूप में भी संवैधानिक रूप से संरक्षित है, पीड़ितों के हितों या समाज के सामूहिक/हित के साथ टकराव की भावना पर विचार करने के लिए आमंत्रित करता है। जब सही अवधारणाओं से समान मूल अधिकार के संबंध में अंतर-संघर्ष होता है तो संवैधानिक न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे कतिपय परिस्थितियों में, संपूर्ण समाज के हित में संतुलन बनाए रखें, जब यह कानून के शासन को बढ़ावा देगा और उसे

स्थापित करेगा। निष्पक्ष विचारण वह नहीं है जो अभियुक्त निष्पक्ष विचारण के नाम पर चाहता है। निष्पक्ष विचारण को अंतिम न्याय को शांत करना चाहिए जो व्यक्तिगत रूप से मांगा जाता है, लेकिन यह तब अभिभावी नहीं होगा जब निष्पक्ष विचारण के लिए आपराधिक कार्यवाहियों के अंतरण की आवश्यकता होगी।

(iii) किसी व्यक्ति का गलत कार्य निष्पक्ष विचारण के अधिकार का अल्पीकरण नहीं कर सकता क्योंकि वह हित, विशेष रूप से आपराधिक विचारण में, विधि के शासन के निकट है। निष्पक्ष न्याय के नाम पर एक अभियुक्त को बुनियादी बातों को छोड़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(iv) निष्पक्ष सुनवाई के मामले में दोनों परिप्रेक्ष्यों के बीच संतुलन संवैधानिक मानदंडों और संवेदनशीलता और व्यापक जनहित के पैमाने पर तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

(v) 1950 के अधिनियम की धारा 3 किसी राज्य की एक जेल से दूसरे राज्य की एक जेल में किसी अभियुक्त या किसी सिद्धदोषी के स्थानांतरण का आदेश पारित करने में न्यायालय की ओर से कोई बाधा नहीं डालती क्योंकि यह केवल कार्यपालिका पर शक्ति के प्रयोग पर रोक लगाती है।

(vi) न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए संविधान के के अधीन प्रदत्त नागरिकों के मूल अधिकारों को कम नहीं कर सकता है। मौलिक नीतिगत सिद्धांतों पर आधारित मूल प्रावधानों के उल्लंघन में आदेश पारित नहीं कर सकता, फिर भी जब वर्तमान प्रकृति का कोई मामला उठता है, तो वह उचित निर्देश जारी कर सकता है ताकि आपराधिक मुकदमा कानून के अनुसार चलाया जा सके। स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना इस न्यायालय का दायित्व और कर्तव्य है।

(vii) यह कहना कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत समता के अधिकार का इस्तेमाल करते हुए यह न्यायालय अभियुक्त को सीवान जेल से दूसरे राज्य की किसी अन्य जेल में स्थानांतरित नहीं कर सकता है, अस्वीकार्य है क्योंकि उक्त तर्क का मूल आधार गलत है, क्योंकि निष्पक्ष सुनवाई के मुद्दे को संबोधित करते हुए, न्यायालय समता में किसी भी प्रकार के क्षेत्राधिकार का उपयोग नहीं कर रहा है।

75. उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, हम बिहार राज्य को तीसरे प्रत्यर्थी, एम. शहाबुद्दीन को सिवान जेल, जिला सिवान से तिहाड़ जेल, दिल्ली में स्थानांतरित करने और कैदी को दिल्ली में उसके स्थानांतरण के लिए पूर्व सूचना देने के बाद तिहाड़ जेल के सक्षम अधिकारी को सौंपने का निर्देश देते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि तीसरे प्रतिवादी को सीवान जेल से तिहाड़ जेल तक एस्कॉर्ट करने वाले अधिकारी ट्रांजिट कैदियों के लिए लागू नियमों का सख्ती से पालन करेंगे और कोई विशेष विशेषाधिकार नहीं दिया जाएगा। यह स्थानांतरण एक सप्ताह के भीतर हो जाएगा। इसके बाद लंबित मुकदमों के संबंध में संबंधित निचली अदालत द्वारा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से सुनवाई की जाएगी। तिहाड़ जेल का सक्षम प्राधिकारी और बिहार राज्य का सक्षम प्राधिकारी सभी आवश्यक प्रबंध करेगा ताकि आरोपी और गवाह वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से मुकदमे के उद्देश्य के लिए उपलब्ध हो सकें। इस आदेश की एक प्रति बिहार सरकार के गृह सचिव, सीवान जेल के अधीक्षक और तिहाड़ जेल, दिल्ली के महानिरीक्षक को तत्काल भेजी जाएगी। सभी संबंधित पक्षों को संविधान के अनुच्छेद 144 के तहत अनुध्यात उपर्युक्त आदेश की सहायता में कार्य करने का निर्देश दिया जाता है।

76. हमने नोट किया है कि पटना उच्च न्यायालय ने कतिपय कार्यवाहियों में स्थगन मंजूर किया है। उच्च न्यायालय से अनुरोध है कि वह इन मामलों को चार महीने के भीतर उनके गुण-दोष के आधार पर निपटाए। इस आदेश की एक प्रति पटना उच्च न्यायालय के

रजिस्ट्रार जनरल को भेजी जाए ताकि इसे कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जा सके।

77. उपर्युक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 147 का निपटारा कर दिया गया है। इसी प्रकार, 2016 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 132 भी बिहार के स्वास्थ्य मंत्री श्री तेज प्रताप यादव और सीवान जिले के पुलिस अधीक्षक के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश देने संबंधी प्रार्थना को छोड़कर निपटाया गया है, जिसके लिए मामले को 21 अप्रैल, 2017 को दोपहर 2 बजे आगे की सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाए।

निधि जैन रिट याचिका का निपटारा

खण्डन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।